माध्यमिक स्तर

हिन्दुस्तानी संगीत

सिद्धान्त (242)

1

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

आईएसओ 9001 : 2000 प्रमाणित

(मा.सं.वि.मं. भारत सरकार के अंतर्गत एक स्वायत्त संस्था)

ए-24-25 इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर-62, नोएडा-201301 (उ. प्र.)

वेबसाइट : www.nios.ac.in टोल फ्री नं. - 18001809393

सलाहकार-समिति

- **अध्यक्ष**
  राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

- **निदेशक (शैक्षिक)**
  राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

पाठ्यक्रम-समिति

- **डॉ. कृष्णा बिष्ट *(अध्यक्ष)***
  प्रोफेसर (सेवानिवृत्त)
  पूर्व संकायाध्यक्ष एवं विभागाध्यक्ष
  संगीत एवं ललित कला विभाग,
  दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

- **डॉ. (स्व.) राकेश बाला सक्सेना**
  एसोसिएट प्रोफेसर,
  विभागाध्यक्ष संगीत विभाग
  श्यामाप्रसाद मुखर्जी कॉलेज
  दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

- **डॉ. मधुबाला सक्सेना**
  प्रोफेसर (सेवानिवृत्त)
  पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत एवं नृत्य विभाग;
  कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय
  कुरूक्षेत्र, हरियाणा

- **डॉ. मल्लिका बनर्जी**
  एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग
  इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली

- **डॉ. सुनीरा कासलीवाल व्यास**
  प्रोफेसर एवं संकायाध्यक्ष
  संगीत एवं ललित कला संकाय
  दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

- **डॉ. रिचा जैन**
  पूर्व सहायक प्रोफेसर,
  भारती कॉलिज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

- **डॉ. कमलेश बाला सक्सेना**
  एसोसिएट प्रोफेसर, (सेवानिवृत्त)
  विभागाध्यक्ष संगीत विभाग
  गोकुलदास स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय,
  बरेली (उ. प्र.)

- **श्रीमती संचिता भट्टाचार्य**
  वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी एवं पाठ्यक्रम समन्वयक
  रा.मु.वि.शि. संस्थान, नोएडा

पाठ-लेखक

- **डॉ. मधुबाला सक्सेना**
  प्रोफेसर (सेवानिवृत्त)
  पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत एवं नृत्य विभाग;
  कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र, हरियाणा

- **डॉ. मल्लिका बनर्जी**
  एसोसिएट प्रोफेसर, संगीत विभाग
  इन्दिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, दिल्ली

- **डॉ. सुभाष रानी चौधरी**
  प्रधानाचार्य (सेवानिवृत्त), गवर्नमेंट स्नातकोत्तर कॉलेज,
  फरीदाबाद, हरियाणा

- **डॉ. रिचा जैन,**
  पूर्व सहायक प्रोफेसर,
  भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

- **डॉ. कमलेश बाला सक्सेना**
  एसोसिएट प्रोफेसर, (सेवानिवृत्त)
  विभागाध्यक्ष संगीत विभाग
  गोकुलदास स्नातकोत्तर कन्या महाविद्यालय,
  बरेली (उ.प्र.)

- **डॉ. (स्व.) रमा सर्राफ़**
  एसोसिएट प्रोफेसर,
  संगीत विभाग, दौलत राम कॉलेज,
  दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

- **डॉ. (स्व.) राकेश बाला सक्सेना**
  एसोसिएट प्रोफेसर,
  विभागाध्यक्ष संगीत विभाग संगीत विभाग
  श्यामाप्रसाद मुखर्जी कॉलिज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संपादक मंडल

प्रो. कृष्णा विष्ट
संकायाध्यक्ष (से.नि.) संगीत तथा ललित कला विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. शैलेन्द्र कुमार गोस्वामी
प्रोफेसर
संगीत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ रिचा जैन
पूर्व सहायक प्रोफेसर
भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

अनुवादक

डॉ रिचा जैन
पूर्व सहायक प्रोफेसर
भारती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डी.टी.पी. कार्य

शिवम् ग्राफिक्स, रानी बाग दिल्ली–110034

आपके साथ दो शब्द

प्रिय शिक्षार्थी

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के माध्यमिक स्तर पर हिंदुस्तानी संगीत के पाठ्यक्रम में आपका स्वागत है और आशा करते हैं कि आप मुक्त तथा दूरस्थ विद्यालयी शिक्षा प्रणाली को पसंद करेंगे। संगीत, लय तथा ताल के माध्यम से अपने भावों को प्रगट करने का एक रोचक माध्यम है। यह पाठ्यक्रम हिंदुस्तानी संगीत की गहरी दृष्टि प्रदान करेगा तथा इसके मूलभूत विषयों के साथ व्यक्तित्व की उन्नति में सहायक होगा। हिन्दुस्तानी संगीत के इस पाठ्यक्रम में सिद्धांत तथा प्रयोग शामिल होंगे और सिद्धांत के लिए 40 अंक तथा प्रयोग के लिए 60 अंक रखे गए हैं। पाठ्यक्रम विशेष रूप से आपके अनुकूल बनाया गया है, जो सहजता से समझने योग्य है। इसे छह स्वतंत्र भागों में विभाजित किया गया है।

इस पाठ्यक्रम से संगीत के सैद्धांतिक तथा प्रायोगिक पक्षों का ज्ञान होगा जिसमें संगीत, इतिहास एवं भारतीय तकनीकी शब्दावली पर विशेष बल दिया गया है। साथ ही, आप इसमें अलग-अलग संगीतज्ञों तथा उनके संगीत में अवदान के विषय में जानेंगे। इनसे आपको संगीत संबंधी अलग-अलग बंदिशों को समझने में सहायता मिलेगी। शास्त्रीय तथा सुगम संगीत के समन्वय से आप शास्त्रीय, सुगम संगीत तथा ताल, अलंकार को समझ सकेंगे। प्रायोगिक संगीत की कक्षाएं आपके अध्ययन केन्द्र पर ली जाएँगी।

भारत सरकार के मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा स्थापित ''स्वयं'' प्लेटफॉर्म के अंतर्गत ''मूक्स'' (मॉर्सन ओपन ऑनलाईन कोर्स) को स्थापित करने में संस्थान को विशेष खुशी है। अनेक विषयों में माध्यमिक स्तर के विषयों का वीडियो तथा अंतक्रिया की सुविधा भी 'स्वयं' के प्लेटफॉर्म पर उपलब्ध है। आप www.swayam.gov वेबसाइट पर जाकर नामांकन कर सकते हैं।

एनआईओएस सभी शैक्षिक वीडियो को (24x7) मा.सं.वि. मंत्रालय द्वारा स्थापित स्वयंप्रभा डीटीएच चैनल पर (2027 से 2032), दोपहर 3.00 से सायं 5.00 बजे तक (सोमवार से शुक्रवार) संवाद के द्वारा सजीव प्रसारण करता है।

हम आशा करते हैं कि आप हमारे साथ हिन्दुस्तानी संगीत सीखने में खुशी महसूस करेंगे। इस सम्बन्ध में हम आपके सुझावों को आमंत्रित करते हैं। कृपया संलग्न फॉर्म में अपने सुझाव दीजिए।

शुभकामनाओं सहित।

पाठ्यक्रम समन्वय समिति

अपने पाठ कैसे पढ़ें

हिन्दुस्तानी संगीत विषय के सिद्धांत की इस पाठ्य सामग्री को विशेष रूप से आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए निर्मित किया गया है। आप स्वतंत्र रूप से स्वयं पढ़ सकें इसलिए इसे एक प्रारूप में ढाला गया है। निम्नलिखित संकेत आपको सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग करने का तरीका बताएंगे। दिए गए पाठों को कैसे पढ़ना है, आइए जानें–

पाठ का शीर्षक : इसे पढ़ते ही आप अनुमान लगा सकते है कि पाठ में क्या दिया जा रहा है। इसे पढ़िए।

भूमिका : यह भाग आपको पूर्व जानकारी से जोड़ेगा और दिए गए पाठ की सामग्री से परिचित कराएगा। इसे ध्यानपूर्वक पढ़िए।

उद्देश्य : प्रस्तुत पाठ को पढ़ने के बाद आप इस पाठ के उद्देश्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो जाएंगे। इन्हें याद कर लीजिए।

पाठगत प्रश्न : इसमें एक शब्द अथवा एक वाक्य में पूछे गए प्रश्न हैं तथा कुछ वस्तुनिष्ठ प्रश्न हैं। ये प्रश्न पढ़ी हुई इकाई पर आधारित हैं। इनका उत्तर आपको देते रहना है। इसी से आपकी प्रगति की जाँच होगी। ये सवाल हल करते समय आप हाथ में पेंसिल रखिए और जल्दी-जल्दी सवालों के समाधान ढूँढ़ते रहिए और अपने उत्तरों की जाँच पाठ के अंत में दी गई उत्तरमाला से मिलाइए। उत्तर ठीक न होने पर इकाई को पुनः पढ़िए।

आपने क्या सीखा : यह पूरे पाठ का संक्षिप्त रूप है–कहीं यह बिंदुओं के रूप में है, कहीं आरेख के रूप में तो कहीं प्रवाह चार्ट के रूप में। इन मुख्य बिंदुओं का स्मरण कीजिए। यदि आप कुछ अपने मतलब की मिलती-जुलती नई बातें जोड़ना चाहते हैं तो उन्हें भी वहीं बढ़ा सकते हैं।

पाठांत प्रश्न : पाठ के अंत में दिए गए लघु उत्तरीय तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न हैं। इन्हें आप अलग पृष्ठों पर लिखकर अभ्यास कीजिए। यदि चाहें तो अध्ययन केंद्र पर अपने शिक्षक या किसी उचित व्यक्ति को दिखा भी सकते हैं और उन पर नए विचार ले सकते हैं।

उत्तरमाला : आपको पहले ही बताया जा चुका है इसमें पाठगत प्रश्नों और क्रियाकलापों के उत्तर दिए जाते हैं। अपने उत्तरों की जाँच इस सूची से कीजिए।

शब्दावली: पाठों में आए कठिन शब्दों को प्रत्येक पाठ के अंत में दिया गया है। इन शब्दों की व्याख्या स्वयं करें।

विषय-सूची

क्र.सं.	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
1.	हिन्दुस्तानी संगीत का परिचय	1
2.	राग के तत्व	15
3.	ताल के तत्व	24
4.	विधाओं का अध्ययन - ध्रुपद तथा धमार	32
5.	हिन्दुस्तानी संगीत की स्वर-लिपि पद्धति	38
6.	सामवेद के संदर्भ में वेदों का संक्षिप्त अध्ययन	44
7.	संगीत रत्नाकर का संक्षिप्त परिचय	53
8.	संगीत पारिजात में निहित विषय-सामग्री का संक्षिप्त अध्ययन	65
9.	संगीत के क्षेत्र में महान विभूतियों की जीवनी और उनका योगदान- राजा मान सिंह तोमर, तानसेन, सदारंग-अदारंग	72
10.	हिन्दुस्तानी संगीत के प्रणेता- पं. विष्णु नारायण भातखंडे तथा पं. विष्णु दिसंबर, पलुस्कर	82
(i)	पाठ्यक्रम	(i-iii)
(ii)	प्रश्नपत्र का प्रारूप	(iv)
(iii)	नमूना प्रश्नपत्र	(v-vi)
(iv)	अंक योजना	(vii-x)

242hi01

1

हिन्दुस्तानी संगीत का परिचय

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत मूल रूप से गायन प्रधान रहा है। यह तथ्य हमें स्वयं 'संगीत' शब्द से ही ज्ञात हो जाता है, जिसका अर्थ है 'सम्यक रूप से गायन'। अधिकतर विधाओं की मूलत: गायन प्रस्तुति एवं वाद्यों की मानव कंठ के अनुसरण के उद्देश्य हेतु संरचना हुई। संगीत के अंतर्गत गायन, वादन तथा नृत्य सम्मिलित माने गये हैं।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात आप–

- नाद, श्रुति, स्वर आदि तत्वों का वर्णन कर सकेंगे;
- नाद के दो मुख्य भेद आहत और अनाहत को स्पष्ट कर सकेंगे;
- सप्तक का अर्थ तथा उसके प्रकार का उल्लेख कर सकेंगे;
- अलंकार और संगीत में उसके प्रयोग से होने वाले लाभों का वर्णन कर सकेंगे।

1.1 संगीत क्या है

संगीत दो शब्दों के मेल से बना है सम् + गीत। सम् का अर्थ है सम्पूर्ण या सम्यक् और गीत का अर्थ है – गायन। दोनों को मिलाकर इसका अर्थ बनता है – सम्पूर्ण

टिप्पणी

गायन। अर्थात् निर्धारित नियमों के अनुसार गायन करना ही संगीत है परन्तु वास्तव में अकेला गायन कला ही संगीत नहीं है। वादन और नर्तन कलाओं का भी समावेश है। संगीत के प्रकांड विद्वान पं. शार्ङ्गदेव के निम्न शब्दों द्वारा इस बात की पुष्टि होती है –

'गीत, वाद्यं तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।'

–संगीतरत्नाकर

1.2 संगीत की पद्धतियाँ

आजकल संगीत की दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं–

उत्तर भारतीय अथवा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति तथा दक्षिण भारतीय अथवा कर्नाटक संगीत पद्धति।

उत्तर भारतीय अथवा हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति

यह पद्धति दक्षिण के चार प्रान्तों को छोड़कर शेष सम्पूर्ण भारत में प्रचलित है। इसके अतिरिक्त भारत के निकटवर्त्ती देशों नेपाल, बांग्लादेश तथा पाकिस्तान में भी इसका प्रचलन है।

दक्षिण भारतीय अथवा कर्नाटक संगीत पद्धति

यह पद्धति दक्षिणी प्रान्तों – केरल, कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश तथा तमिलनाडु में प्रचलित है। संगीत की ये दोनों पद्धतियाँ यद्यपि एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं फिर भी इन दोनों में बहुत–सी समानताएं है यथा –

1. दोनों पद्धतियाँ एक सप्तक में बाईस श्रुतियाँ मानती हैं।
2. दोनों पद्धतियाँ एक सप्तक में कुल बारह स्वर मानती हैं।
3. दोनों पद्धतियाँ ठाठ राग सिद्धांत को मानती हैं।
4. दोनों पद्धतियों में संगीत राग और ताल पर आधारित है।

पाठगत प्रश्न 1.1

1. संगीत में किन–किन कलाओं का समावेश है?
2. संगीत की तीन कलाओं में कौन–सी कला प्रमुख है?
3. संगीत की कितनी पद्धतियाँ हैं? उनके नाम लिखें।

1.3 नाद क्या है

नाद वह मधुर ध्वनि है जो किसी भौतिक वस्तु (मुख अथवा अन्य किसी पदार्थ) से उत्पन्न होती है तथा किसी भौतिक माध्यम (ठोस, तरल अथवा गैस) के द्वारा कानों तक पहुँचती है। यह प्रक्रिया उस वस्तु में कम्पन अथवा आन्दोलन से होती है। ये आन्दोलन जब नियमित रूप से होते हैं तो उनसे उत्पन्न ध्वनि मधुर और संगीतोपयोगी होती है, इसी ध्वनि को **नाद** कहते हैं। यदि आन्दोलन अनियमित हों, तो वह कोलाहल युक्त ध्वनि होती है, जिसका संगीत में प्रयोग नहीं होता।

1.4 नाद की परिभाषा

नाद शब्द 'न' और 'द' इन दो अक्षरों का समुच्चय है। 'न' यानि 'नकार' प्राण का तथा 'द' यानि 'दकार' अग्नि का द्योतक है। इसलिए प्राण तथा अग्नि के संयोग से उत्पन्न इस समुच्चय को **नाद** कहते हैं।

नाद के दो प्रकार हैं – **आहत नाद** तथा **अनाहत नाद**। जहां आहत नाद दो वस्तुओं के घर्षण से उत्पन्न होता है, वहीं अनाहत नाद बाहरी निमित्त के बिना साधना द्वारा साध्य है। आहत नाद का संगीत से सम्बन्ध है, अनाहत का संगीत में उपयोग नहीं होता।

1.4.1 आहत नाद – इस नाद की तीन मुख्य विशेषताएं हैं –

तारता, तीव्रता तथा **गुण**

- **तारता** – तारता से तात्पर्य नाद के ऊँचे नीचेपन से है। नाद की तारता ध्वन्योत्पादक वस्तु की आवृत्ति (आन्दोलन संख्या) पर निर्भर करती है। आवृत्ति जितनी कम होगी नाद उतना नीचा होगा तथा आवृत्ति जितनी अधिक होगी, नाद उतना ऊँचा होगा। जैसे 'स' की आन्दोलन संख्या 240 है, 'रे' की 270 अत: 'स' से 'रे' की आवृत्ति अधिक होने से 'रे' की ध्वनि 'स' से ऊँची है तथा 'स' की आवृत्ति 'रे' से कम होने के कारण 'स' का नाद 'रे' के नाद से नीचा है। संगीत में लगभग साठ आवृत्ति से लेकर चार हज़ार तक की आन्दोलन संख्या के नाद का प्रयोग ही सम्भव है।

- **तीव्रता** – तीव्रता से तात्पर्य नाद के छोटे-बड़ेपन अथवा उसके धीमा और तेज़ होने से है। यह विशेषता नाद उत्पन्न करने के लिये प्रयुक्त बल पर निर्भर करती

है। यदि किसी तार अथवा तबले के पूड़े पर धीमे से आघात करें तो वह नाद अल्प दूरी तक सुनाई देगा परन्तु यदि इन पर ज़ोर से आघात करें अथवा कन्ठ से बलपूर्वक ध्वनि उत्पन्न करने का प्रयत्न करें तो वह नाद अधिक दूरी तक सुनाई देगा। यही नाद की तीव्रता है।

- **गुण** – नाद की उत्पत्ति के अनेक माध्यम हैं। विभिन्न माध्यमों से उत्पन्न जो भिन्न-भिन्न रूप ध्वनि ग्रहण करती है उसे नाद की **जाति** अथवा **गुण** कहते हैं। नाद के इस गुण से यह मालूम होता है कि उत्पन्न नाद किसी वाद्य विशेष का है अथवा किसी व्यक्ति विशेष के कन्ठ का। माध्यम की यह विभिन्नता ही नाद की जाति है।

1.4.2. अनाहत नाद – इस नाद का सम्बन्ध केवल मानव देह से है, बाह्य उपकरणों यथा वाद्यों इत्यादि से नहीं। यह नाद ईश्वर प्राप्ति का साधन है और उसका स्वरूप भी। इसीलिये इसे ब्रह्मरूपा भी कहा गया है। योगीजन कठोर योग साधना द्वारा इसकी प्राप्ति करते हैं तथा नित्य श्रवण करने में समर्थ होते हैं। यह अजन्मा तथा स्वयंभू है। संगीत में इसका उपयोग नहीं होता।

पाठगत प्रश्न 1.2

1. नाद के कितने भेद हैं, उनके नाम लिखिए।
2. आहत नाद की मुख्य विशेषताएं कौन-कौन सी हैं।
3. नाद की तीव्रता तथा तारता से आप क्या समझते हैं?
4. अनाहत नाद का श्रवण कौन कर सकता है?
5. क्या अनाहत नाद संगीतोपयोगी है?

1.5 श्रुति क्या है

श्रुति नाद का लघुतम रूप है। इस शब्द की परिभाषा 'संगीत रत्नाकर' में इस प्रकार उपलब्ध है '**श्रवणाच्छ्रुतयो मताः** भावार्थ यह है कि जिस लघु ध्वनि को कान ग्रहण करें वह श्रुति है। संगीत में यही श्रुति स्वर का आधार है तथा इसी के द्वारा रागों की रचना सम्भव है।

1.6 श्रुति संख्या

श्रुति संख्या के विषय में विद्वानों में विभिन्न मत प्रचलित हैं। इनमें से मुख्य तीन हैं। एक मत के अनुसार श्रुतियों की संख्या एक सप्तक में बाईस है, दूसरे के मतानुसार छियासठ

है तथा तीसरे मत के अनुसार श्रुतियों की संख्या अनन्त है। इनमें से प्रथम मत अर्थात बाईस श्रुतियों वाले मत को ही सर्वाधिक मान्यता प्राप्त है।

पाठगत प्रश्न 1.3

1. संगीत रत्नाकार के अनुसार श्रुति की परिभाषा क्या है?
2. श्रुति संख्या के विषय में विद्वानों में कितने मत हैं?
3. श्रुति संख्या के विषय में किस मत को मान्यता प्राप्त है?

1.7 स्वर क्या है

स्वर को स्वयं में स्निग्ध, अनुरणनात्मक श्रोताओं के चित्त का रंजन करने योग्य ध्वनि के रूप में परिभाषित किया गया है।

1.7.1 स्वरों की संख्या

वैदिक काल में आरम्भ में केवल तीन स्वरों का प्रयोग होता था, जिनके नाम थे–उदात्त, अनुदात्त, स्वरित। उदात्त-ऊँचा, अनुदात्त-नीचा तथा स्वरित-बीच का। धीरे-धीरे इनका क्रमिक विकास हुआ। तीन से चार, चार से पाँच और पाँच से सात वैदिक स्वर विकसित हुए। तत्पश्चात् लौकिक सप्त स्वरों का विकास हुआ। इनका विधिवत् उल्लेख सर्वप्रथम भरत के नाट्यशास्त्र ग्रन्थ में मिलता है। इन्हें निम्न संज्ञाओं से सम्बोधित किया गया।

षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पंचम, धैवत और निषाद। इन्हीं को 'स', 'रे', 'ग', 'म', 'प', 'ध', 'नि' इन संक्षिप्त नामों से सम्बोधित किया जाता है जो क्रियात्मक रूप में व्यवहार में प्रचलित हैं। इन स्वरों की स्थापना सप्तक की बाईस श्रुतियों पर निम्न सिद्धांत के आधार पर की गई है–

> 'चतुश्चतुश्चतुश्चैव षड्जमध्यमपंचमा
> द्वे द्वे निषाद गान्धारौ त्रिस्त्रीऋषभधैवतो।'

अर्थात् स, म, प की चार-चार श्रुतियाँ, रे, ध की तीन-तीन श्रुतियाँ तथा ग, नि, की दो-दो श्रुतियाँ हैं। इन्हें निम्न तालिका द्वारा इस प्रकार दर्शाया जा सकता है–

टिप्पणी

श्रुति संख्या	स्वरनाम	श्रुति संख्या	स्वरनाम	श्रुति संख्या	स्वरनाम
1		8		14	
2		9	गन्धार	15	
3		10		17	पंचम
4	षड्ज	11		18	
5		12		19	
6		13	मध्यम	20	धैवत
7	ऋषभ			21	
				22	निषाद

इस प्रकार ये सात शुद्ध स्वर हुए। भरत ने इनके अतिरिक्त दो साधारण स्वर-अन्तर गान्धार तथा काकली निषाद भी कहे हैं। आधुनिक ग्रन्थकारों के अनुसार सात शुद्ध स्वरों के अतिरिक्त विकृत स्वरों की संख्या पाँच निश्चित की गई है। संक्षेप में शुद्ध तथा विकृत स्वरों को इस प्रकार समझ सकते हैं।

1.7.2 शुद्ध स्वर – जब स्वर अपनी निश्चित श्रुतियों पर स्थित होते हैं तो उन्हें शुद्ध स्वर कहते है जैसे अपने मूल रूप में प्रतिष्ठित **स**, **रे**, **ग**, **म**, **प**, **ध**, **नि**, ये सात शुद्ध स्वर हैं। इन सात शुद्ध स्वरों में से षड्ज और पंचम ये दो अचल स्वर है क्योंकि ये अपने निश्चित स्थान पर स्थिर रहते हैं, अत: इनके दो रूप नहीं हो सकते।

1.7.3 विकृत स्वर षड्ज और पंचम के अतिरिक्त अन्य स्वर अपने नियत स्थान से परिवर्तित भी हो सकते हैं अत: इन्हें चल या विकृत स्वर भी कहते हैं। उनकी यह विकृत अवस्था दो रूपों में होती है –कोमल विकृत तथा तीव्र विकृत । **'रे'**, **'ग'**, **'म'**, **'ध'**, **'नि'**, स्वरों को इस श्रेणी में रखा जा सकता है। इनमें से **'रे'**, **'ग'**, **'ध'**, **'नि'**, अपने स्थान से पूर्व की श्रुतियाँ लेकर कोमल रूप धारण करते हैं तथा मध्यम अपने नियत स्थान से ऊपर की श्रुतियाँ लेकर तीव्र रूप धारण करता है। कोमल स्वर की पहचान के लिये (भातखन्डे स्वरलिपि के अनुसार) स्वर के नीचे पड़ी रेखा तथा तीव्र स्वर की पहचान के लिये स्वर के ऊपर खड़ी रेखा का चिन्ह लगाया जाता है।

पाठगत प्रश्न 1.4

1. वैदिक स्वरों का विकास किस क्रम से आरम्भ हुआ?
2. लौकिक स्वरों का विधिवत् उल्लेख सर्वप्रथम किस ग्रन्थ में मिलता है?
3. नाट्यशास्त्र में कितने स्वरों का उल्लेख किया गया है?
4. सप्त स्वरों की स्थापना किन-किन श्रुतियों पर की गई है?
5. कौन-कौन से स्वर विकृत रूप ले सकते हैं?

टिप्पणी

1.8 सप्तक की परिभाषा

संगीत में नाद, श्रुति तथा स्वर के पश्चात् सप्तक का अध्ययन क्रम प्राप्त है। सामान्य भाषा में सप्तक से तात्पर्य सात के समूह से है – 'सप्तक सप्तानां समूहः'। इसी का अभिप्राय संगीत में सप्त स्वरों के क्रमिक समूह से लिया गया है। ध्वनि के आधार पर यद्यपि अनेक सप्तक निर्मित हो सकते हैं परन्तु संगीत में प्रायः तीन ही सप्तकों का प्रयोग किया जाता है। सप्तक को स्थान का नाम भी दिया गया है। इन तीन सप्तकों को संक्षेप में इस प्रकार समझा जा सकता है –

1.8.1 मन्द्र सप्तक

मन्द्र का अर्थ है नीचा। जो सप्तक सामान्य ध्वनि से दुगुनी नीची ध्वनि के लिये प्रयुक्त होता है, उसे मन्द्र सप्तक कहते हैं। गायन में इस सप्तक के स्वरों का उच्चारण करने से कंठ पर ज़ोर पड़ता है। लिखने में मन्द्र सप्तक के स्वरों की पहचान के लिये उनके नीचे बिन्दी लगा दी जाती है जैसे स़ ऱे ग़ म़ प़ ध़ नि़। (ये चिन्ह भातखन्डे पद्धति के अनुसार हैं)

1.8.2 मध्य सप्तक

मध्य का अर्थ है बीच का अथवा सामान्य। गायन-वादन का अधिक प्रदर्शन इसी सप्तक में किया जाता है। मन्द्र सप्तक के स्वरों से इस सप्तक के स्वरों की ध्वनि दुगुनी ऊँची होती है। गायन में इस सप्तक के स्वरों का उच्चारण करने से कन्ठ पर ज़ोर पड़ता है। मध्य सप्तक के स्वरों को लिखने के लिये किसी भी चिन्ह की आवश्यकता नहीं जैसे – **स, रे, ग, म, प, ध, नि।** ये मध्य सप्तक के स्वर हैं।

1.8.3 तार सप्तक –

मध्य सप्तक से ऊँचा गाने के लिये तार सप्तक के स्वरों का प्रयोग किया जाता है। इस सप्तक के स्वरों की ध्वनि मध्य सप्तक के स्वरों से दुगुनी ऊँची होती है। तार सप्तक के स्वरों के उच्चारण के लिये तालू तथा मस्तिष्क पर ज़ोर पड़ता है। इन स्वरों को लिखने के लिये स्वर के ऊपर बिन्दी लगाते हैं जैसे सं, रें, गं, मं, पं, धं, निं।

(ये चिन्ह भातखन्डे पद्धति के अनुसार हैं)

गायन और वादन में प्रायः इन्हीं तीन सप्तकों का प्रयोग होता है। सात शुद्ध स्वरों के साथ उनके पाँच विकृत रूप भी सप्तक के अन्तर्गत माने जाते हैं।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 1.5

1. संगीत के संदर्भ में सप्तक से क्या अभिप्राय है?
2. संगीत में कितने सप्तकों का प्रयोग किया जाता है, उनके नाम बताइये?
3. तीन सप्तकों को लिखते समय उनमें कैसे अन्तर रखा जाता है?
4. तीन सप्तकों के स्वर लगाते समय शरीर के किस भाग पर विशेष प्रभाव पड़ता है?
5. क्या सप्तक के सात शुद्ध स्वरों के साथ शेष पांच विकृत स्वरों का गायन वादन में प्रयोग होता हैं?

1.9 वर्ण क्या है

यद्यपि वर्ण के कई अर्थ हैं जैसे अक्षर, रंग, जाति, श्रेणी आदि परन्तु संगीत में इसका अर्थ गायन और वादन की विभिन्न क्रियाओं से है –

'गान क्रियोच्यते वर्णः'

क्रिया से तात्पर्य गायन में स्वरों के विभिन्न चलन अथवा गति से है। इस क्रिया के आधार पर वर्ण कुल चार कहे गए हैं –

1.9.1 स्थायी वर्ण – स्थायी का अर्थ है – स्थिर होना। जब एक ही स्वर का निरंतर अथवा एक से अधिक बार उच्चारण किया जाता है तो उसे स्थायी वर्ण कहते हैं जैसे स...., रे.... अथवा ससस, रेरेरे, गगग इत्यादि।

1.9.2 आरोही वर्ण – नीचे के स्वरों से ऊपर के स्वरों की ओर गमन करने को अर्थात स्वरों के चढ़ते क्रम को आरोही वर्ण कहते हैं जैसे **स रे ग म प ध** अथवा **स ग म ध**। इसमें प्रत्येक स्वर का प्रयोग होना अनिवार्य नहीं। राग में प्रयुक्त स्वरों के अनुसार स्वरों का क्रमभंग भी हो सकता है परन्तु प्रयोग विधि आरोहात्मक होनी चाहिये।

1.9.3 अवरोही वर्ण – स्वरों के उतरते क्रम को अर्थात ऊपर के स्वरों से नीचे के स्वरों का प्रयोग करने की विधि को अवरोही वर्ण कहते हैं। आरोही वर्ण के समान इसमें भी समस्त स्वरों का प्रयोग अनिवार्य नहीं है। राग के अनुसार उनमें कुछ स्वर वर्जित भी हो सकते हैं जैसे – **सं नि प म ग**।

1.9.4 संचारी वर्ण – स्थायी आरोही तथा अवरोही वर्णों के मिश्रण को संचारी वर्ण कहते हैं अर्थात उपरोक्त तीन वर्णों को मिलाने से संचारी वर्ण की उत्पत्ति होती है जैसे

– **स रे ग प, ध ग प, ग प ध सं, सं सं सं, ध ध ध प, ग प ध प, ग, रे, स** यह संचारी वर्ण हुआ।

पाठगत प्रश्न 1.6

1. वर्ण का संगीत के संदर्भ में क्या अभिप्राय है?
2. कुल कितने वर्ण हैं? नाम बताइये।
3. स्थायी वर्ण से क्या तात्पर्य है?
4. आरोही तथा अवरोही वर्ण से आप क्या समझते हैं?
5. संचारी वर्ण किसे कहते हैं?

1.10 अलंकार की परिभाषा

अलंकार शब्द का सामान्य अर्थ है 'आभूषण'। जिस प्रकार आभूषण शरीर को सुन्दर बनाता है, संगीत की सुन्दर प्रस्तुति के लिए अलंकार का प्रयोग होता है। संगीत के संदर्भ में किसी विशिष्ट वर्ण समुदाय अथवा क्रमानुसार नियमबद्ध स्वर समुदायों को अलंकार कहते हैं। पं. शार्ङ्गदेव के अनुसार **'विशिष्ट वर्णसंदर्भम् अलंकारं प्रचक्षते। -संगीत रत्नाकर**

आधुनिक विद्वान अलंकार को पल्टा कहकर भी सम्बोधित करते हैं। इनकी रचनाविधि में एक निश्चित क्रम रहता है। अलंकार के प्रारम्भ में स्वरों का जो एक विशिष्ट क्रम लिया जाता है, उसी क्रम के प्रत्येक स्वर को प्रारम्भिक स्वर मानकर आरोह निर्मित किया जाता है। इसी नियम का पालन उसके अवरोह में उसके विपरीत क्रम से किया जाता है, यही अलंकार है। अलंकार का एक उदाहरण नीचे प्रस्तुत है –

आरोह – सा रे ग, रे ग म, ग म प, म प ध, प ध नि, ध नि सं

अवरोह – सां नि ध, नि ध प, ध प म, प म ग, म ग रे, ग रे स।

प्रत्येक राग में विभिन्न अलंकारों की रचना कर उनका अभ्यास करने से हाथ (वादन के लिये) अथवा कन्ठ (गायन के लिये) की तैयारी होती है, स्वर ज्ञान में लाभ होता है तथा राग का विस्तार करने में सहायता मिलती है। राग में पारंगत होने के लिये उसके अलंकारों का अभ्यास अत्यधिक लाभप्रद है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 1.7

1. संगीत के संदर्भ में अलंकार से क्या तात्पर्य है?
2. अलंकार की अन्य संज्ञा क्या है?
3. अलंकार के क्या उपयोग हैं?

आपने क्या सीखा

1. संगीत

(i) संगीत दो शब्दों के मेल से बना है – सम्+गीत

(ii) संगीत में गायन, वादन तथा नृत्य तीनों कलाओं का समावेश है।

(iii) तीनों कलाओं में गायन मुख्य है।

(iv) संगीत की दो पद्धतियाँ हैं – उत्तरी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति तथा दक्षिणी कर्नाटक संगीत पद्धति।

(v) दक्षिणी पद्धति दक्षिण के चार प्रान्तों में तथा उत्तरी पद्धति शेष भारत में प्रचलित है।

(vi) दोनों पद्धतियों में कुछ समानताएं तथा कुछ विभिन्नताएं हैं।

2. नाद

(i) नाद प्राण तथा अग्नि के संयोग से उत्पन्न होता है।

(ii) नाद के दो भेद – आहत तथा अनाहत हैं।

(iii) आहत नाद – संगीतोपयोगी, अनाहत नाद–संगीतोपयोगी नहीं

(iv) आहत नाद दो वस्तुओं के घर्षण से उत्पन्न होता है, अनाहत नाद – स्वयंभू–होता है।

(v) आहत नाद की तीन विशेषताएं – तारता, तीव्रता तथा गुण।

तारता से तात्पर्य – नाद का ऊँचा–नीचापन।

तीव्रता से तात्पर्य – नाद का धीमा और तेज़ होना।

गुण से तात्पर्य – नाद की जाति।

टिप्पणी

3. श्रुति

(i) नाद का छोटे से छोटा रूप श्रुति।

(ii) श्रुति संख्या के विषय में मत – बाईस, छियासठ तथा अनन्त।

(iii) बाईस श्रुतियों के मत को अधिक मान्यता।

4. स्वर

(i) स्वर की परिभाषा।

(ii) स्वरों की संख्या।

(iii) वैदिक स्वरों का विकास तीन से सात।

(iv) लौकिक स्वर सात।

(v) लौकिक स्वरों के नाम।

(vi) सप्तक की बाईस श्रुतियों पर स्वरों की स्थापना।

(vii) लौकिक स्वर– सात शुद्ध, पाँच विकृत।

(viii) स्वरों के दो भेद–अचल स्वर तथा चल स्वर।

5. सप्तक

(i) सप्त स्वरों का समूह सप्तक।

(ii) तीन सप्तक – मन्द्र, मध्य, तार।

(iii) गायन और वादन की सीमा – तीन सप्तक तक।

6. वर्ण

(i) वर्ण का तात्पर्य–गायन और वादन की विभिन्न क्रियाएं।

(ii) वर्ण के प्रकार – स्थायी, आरोही, अवरोही, संचारी।

7. अलंकार

(i) अलंकार का अर्थ।

(ii) संगीत की सुन्दर प्रस्तुति के लिए अलंकार का प्रयोग।

(iii) वर्तमान परिप्रेक्ष्य में अलंकार का स्वरूप।

पाठांत प्रश्न

1. संगीत का स्वरूप क्या है? संक्षेप में उल्लेख कीजिए।

2. नाद से क्या तात्पर्य है? विस्तार से लिखिए।

टिप्पणी

3. 'श्रुति और श्रुतियों की संख्या', पर अपना मत व्यक्त कीजिए।

4. 'स्वर संगीत का मधुरतम अंश है', इसकी विस्तृत व्याख्या कीजिए।

5. सप्तक से क्या तात्पर्य है? इनकी संख्या कितनी है? विस्तारपूर्वक लिखें।

6. वर्ण का संगीत के संदर्भ में क्या अभिप्राय है? कुल कितने प्रकार के वर्ण हैं, विस्तारपूर्वक लिखें।

7. अलंकार का सामान्य अर्थ क्या है? इसकी संगीत में क्या उपयोगिता है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1.1 संगीत

1. गायन, वादन तथा नृत्य।
2. गायन।
3. दो–उत्तर भारतीय (हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति) तथा दक्षिण भारतीय (कर्नाटक पद्धति)

1.2 नाद

1. दो – 1. आहत 2. अनाहत।
2. तीन – तारता, तीव्रता तथा गुण।
3. तीव्रता नाद का छोटाबड़ापन या नाद का धीमा और तेज़ होना बताती है तथा तारता नाद का ऊँचानीचापन। गुण गायन या विशिष्ट वाद्य की पहचान बताती है।
4. योगीजन।
5. नहीं।

1.3 श्रुति

1. 'श्रवणाच्श्रृतयो मत:'।
2. तीन।
3. बाईस श्रुतियों का मत।

1.4 स्वर

1. तीन से चार, चार से पाँच तथा पाँच से सात स्वर।
2. भरत के नाट्यशास्त्र में।

3. नौ – सात शुद्ध, दो साधारण।

4. 4, 7, 9, 13, 17, 20, 22वीं श्रुति पर।

5. रे ग म ध नि।

1.5 सप्तक

1. सप्त स्वरों का समूह।

2. तीन – मन्द्र, मध्य, तार।

3. मन्द्र सप्तक में स्वरों के नीचे बिन्दी।

   मध्य सप्तक – कोई चिन्ह नहीं।

   तार सप्तक में स्वरों के ऊपर बिन्दी।

4. मन्द्र सप्तक – हृदय पर, मध्य सप्तक – कन्ठ पर, तार सप्तक – तालु तथा मस्तिष्क पर।

1.6 वर्ण

1. 'गान क्रियोच्यते वर्ण:' अथवा गायन और वादन की विभिन्न क्रियाएँ।

2. चार–स्थायी, आरोही, अवरोही, संचारी।

3. एक ही स्वर का बार–बार प्रयोग।

4. स्वरों का चढ़ता तथा उतरता क्रम।

5. स्थायी, आरोही तथा अवरोही वर्णों का मिश्रण।

1.7 अलंकार

1. विशिष्ट वर्ण समुदाय।

2. पल्टा।

3. हाथ (वादन के लिये) अथवा कंठ (गायन के लिये) की तैयारी, स्वर ज्ञान में लाभ, राग विस्तार में सहायता।

4. स्वरों की विशिष्ट रचनाओं का क्रमानुसार आरोह–अवरोह

5. आरोह – सारेग, रेगम ....

   अवरोह – सानिध, निधप ....

पारिभाषिक शब्दावली

1. समुच्चय – संग्रह
2. भौतिक – प्राकृतिक
3. माध्यम – ज़रिया
4. वस्तु – पदार्थ
5. ध्वन्योत्पादक – ध्वनि उत्पन्न करने वाला
6. आवृत्ति – कम्पन संख्या
7. आघात – प्रहार, चोट
8. लघुतम – सबसे छोटा
9. व्युत्पत्ति – उत्पत्ति
10. निकटवर्ती – पड़ोसी
11. सम्बोधित – बुलाना
12. अनुरणनात्मक – गूँजदार
13. श्रोता – सुनने वाला
14. रंजक – आनन्द प्रदान करने वाला
15. वर्जन – प्रयुक्त न होना, मना होना
16. प्रतिष्ठित – स्थापित
17. स्वयंभू – स्वयं विद्यमान
18. उच्चारण – बोलना
19. मिश्रण – मिला हुआ
20. विस्तार – बढ़ाना
21. रचना विधि – बनाने का तरीका
22. सर्वकालीन – हमेशा रहने वाला

242hi02

2

राग के तत्त्व

भारतीय समाज में संगीत की अभिव्यक्ति शास्त्रीय एवं लोक, दोनों ही धाराओं के माध्यम से होती है। समस्त शास्त्रीय संगीत का उद्भव लोक संगीत से माना जाता है, जो निश्चित नियमों से बंधने पर शास्त्रीय संगीत का रूप ले लेता है। भारत में हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की परम्परा विविध शैलियों एवं विधाओं से परिपूर्ण है। वह मूलभूत स्वरयुक्त संयोजना जो इन्हें परिभाषित करती है, 'राग' कहलाती है।

राग एवं ताल की अवधारणाएँ संगीत के प्रमुख अवयवों, क्रमशः स्वर एवं लय को अभिव्यक्त करती हैं। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की विभिन्न विधाओं एवं शैलियों के अंतर्गत यदि ताल वह धरातल है, जिस पर किसी बंदिश की स्थापना होती है, तो राग उस बंदिश की स्वरयुक्त व्याख्या एवं विस्तार का आंतरिक मर्म है। हिन्दुस्तानी संगीत का शास्त्रीय स्वरूप राग के माध्यम से दृढ़ नियमों से जुड़े होने के कारण उजागर होता है, जो संगीत की अन्य धाराओं में दृष्टिगत नहीं होता।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् आप–

- राग को परिभाषित कर सकेंगे;
- हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के अंतर्गत राग की अवधारणा का वर्णन कर सकेंगे;
- राग की विशेषताओं का उल्लेख कर सकेंगे; तथा
- राग के विभिन्न तत्त्वों का उल्लेख कर सकेंगे।

2.1 राग की अवधारणा एवं उसकी परिभाषा

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत मूलतः सुरीला है तथा राग उसका केन्द्रबिंदु है। 'राग' शब्द हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के लिए पर्याय समान है। राग की अवधारणा लगभग 2000 वर्ष पुरानी है। **'राग'** शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत धातु 'रञ्ज' (रंगना, रंजकता प्रदान करना) से मानी जाती है। व्युत्पत्ति के आधार पर इसे 'रञ्जयति इति

टिप्पणी

राग:,' के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, अर्थात् वह जो रंजकता प्रदान करे, वह **राग** है।

राग को सांगीतिक स्वरों के उस स्वरानुक्रम विन्यास के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका सुनिश्चित गुणधर्म होता है तथा जो विशेष नियमों के द्वारा संचालित है। अपने वास्तविक अर्थ में **राग** का सर्वप्रथम उल्लेख **मतंग** द्वारा रचित ग्रंथ **'बृहद्देशी'** लगभग 8वीं शताब्दी में हुआ है।

समय के साथ **राग** में कई बदलाव आये हैं, परन्तु उसकी मूल विशेषताएँ कभी भी विवादास्पद नहीं रहीं। **राग** के लिए प्रमुख आवश्यकता होती है श्रोता का मनोरंजन करना। **राग** केवल एक सांगीतिक सप्तक नहीं, अपितु एक विशिष्ट स्वरों की व्यवस्था है, जिसकी संपूर्ण सक्षमता एवं जटिलता उसके प्रस्तुतिकरण से ही ज्ञात हो सकती है। यद्यपि राग को प्रस्तुत करने के लिये एक संगीतज्ञ को यथोचित स्वतंत्रता रहती है, परन्तु कुछ मूल नियमों एवं विशेषताओं का परिपालन वांछनीय है। राग की ये विशेषताएँ भारत के महान संगीतविदों के द्वारा सौंपी गई हैं तथा आज भी हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के प्रयोगधर्मी कलाकार इनका अनुसरण करते हैं। ये निम्न रूप से हैं:–

- रागों की उत्पत्ति ठाठों से होती है।
- राग में षड्ज (सा) वर्जित नहीं होता है।
- राग के अंतर्गत मध्यम तथा पंचम एक साथ वर्जित नहीं होते हैं।
- राग के अंतर्गत आरोही तथा अवरोही स्वरों का सुनिश्चित समुच्चय होना चाहिए।
- राग में वादी, संवादी तथा अनुवादी स्वर होने चाहिए।
- राग में कम-से-कम पाँच स्वर होने चाहिए (एक या दो स्वर वर्जित हो सकते हैं)।
- हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में रागों के लिए दिन के भिन्न प्रहर तथा भिन्न ऋतुए निर्धारित हैं।

पाठगत प्रश्न 2.1

1. **'राग'** शब्द की व्युत्पत्ति जिस संस्कृत धातु से हुई है, उसका नाम बताइए।
2. किसी **राग** के लिये प्रमुख आवश्यकता क्या होती है?
3. ठाठ की क्या उपयोगिता है?
4. **राग** में कौन-सा स्वर वर्जित नहीं होता है?
5. **राग** के अंतर्गत कौन-से दो स्वर एक साथ वर्जित नहीं होते हैं?

टिप्पणी

2.2 राग के तत्त्व

2.2.1 ठाठ

सप्तक के अंतर्गत सात शुद्ध एवं पाँच विकृत स्वर होते हैं। इन बारह (सात शुद्ध एवं पाँच विकृत स्वर) स्वरों में से सात चयन किये गये स्वरों का समुच्चय **ठाठ** बनता है। अन्य शब्दों में, आरोहात्मक क्रम से व्यवस्थित सात स्वरों का सांगीतिक सप्तक **ठाठ** कहलाता है परन्तु, यह सांगीतिक विन्यास का केवल एक ढाँचा होता है जिसका प्रयोजन गायन नहीं है। ठाठ से ही रागों की उत्पत्ति होती है।

विख्यात संगीतविद पं. विष्णु नारायण भातखंडे (1860–1936) के अनुसार दस ठाठ हैं, यथा–**बिलावल, कल्याण, खमाज, भैरव, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, भैरवी** तथा **तोड़ी**।

2.2.2 राग जाति

राग में प्रयुक्त स्वरों की संख्या के आधार पर तीन प्रकार की जातियाँ होती हैं:–

1. **संपूर्ण** – जिस राग में आरोह तथा अवरोह में सात स्वरों का प्रयोग होता है, वह संपूर्ण कहलाती है।

2. **षाडव** – जिस राग में आरोह तथा अवरोह में छह स्वरों का प्रयोग होता है, वह षाडव कहलाती है।

3. **औडव** – जिस राग में आरोह तथा अवरोह में पाँच स्वरों का प्रयोग होता है, वह औडव कहलाती है।

ये मुख्य जातियाँ आपसी विनिमय तथा संयोजन के पश्चात् छह अन्य जातियों को जन्म देती हैं, यथा

1. **संपूर्ण – षाडव** – जिस राग के आरोह में सात तथा अवरोह में छह स्वर होते हैं, वह संपूर्ण – षाडव कहलाती है।

2. **संपूर्ण – औडव** – जिस राग के आरोह में सात तथा अवरोह में पाँच स्वर होते हैं, वह संपूर्ण–औडव कहलाती है।

3. **षाडव – संपूर्ण** – जिस राग के आरोह में छह तथा अवरोह में सात स्वर होते हैं, वह षाडव – संपूर्ण कहलाती है।

4. **षाडव – औडव** – जिस राग के आरोह में छह तथा अवरोह में पाँच स्वर होते हैं, वह षाडव–औडव कहलाती है।

टिप्पणी

5. **औडव - संपूर्ण** - जिस राग के आरोह में पाँच तथा अवरोह में सात स्वर होते हैं, वह औडव - संपूर्ण कहलाती है।

6. **औडव - षाडव** - जिस राग के आरोह में पाँच तथा अवरोह में छह स्वर होते हैं, वह औडव-षाडव कहलाती है।

पाठगत प्रश्न 2.2

1. **ठाठ** किसे कहते हैं?
2. **ठाठ** से किसकी उत्पत्ति होती है?
3. भातखंडे के अनुसार **ठाठ** कितने हैं?
4. **संपूर्ण** जाति राग में स्वरों की संख्या तथा व्यवस्था क्या है?
5. **औडव - संपूर्ण** जाति राग में स्वरों की संख्या तथा व्यवस्था क्या है?

2.2.3 आरोह

चढ़ते हुए क्रम में स्वरों का समुच्चय **आरोह** कहलाता है, यथा

राग भूपाली का आरोह - **सा रे ग प ध सां**

2.2.4 अवरोह

उतरते हुए क्रम में स्वरों का समुच्चय अवरोह कहलाता है, यथा

राग भूपाली का अवरोह - **सां ध प ग रे सा**

राग के आरोह तथा अवरोह के माध्यम से राग के गायन में प्रयुक्त स्वरों का अनुक्रम ज्ञात होता है। निम्न उदाहरणों के द्वारा यह समझा जा सकता है:-

राग अल्हैया बिलावल का आरोह-

सा रे ग प ध नि सां

ऊपर दिये गये स्वरों के क्रम से स्पष्ट होता है कि राग अल्हैया बिलावल में आरोह में 'म' वर्जित होता है।

राग अल्हैया बिलावल का अवरोह-

सां नि ध प ध नि ध प म ग म रे सा

टिप्पणी

ऊपर दिये गये स्वरों का समुच्चय राग अल्हैया बिलावल का उतरता क्रम दर्शाना है।

2.2.5 पकड़

प्रत्येक राग के लिये निजी रूप से स्वरों का एक सुनिश्चित अनुक्रम जिसके द्वारा श्रोता राग को तुरन्त पहचान सके, पकड़ कहलाता है। अंग्रेजी में इसका अनुवाद 'कैच फ्रेज' के रूप में हो सकता है। उदाहरण के लिये, राग यमन की पकड़ है – **नि़ रे ग रे सा, प म॑ ग रे सा**

2.2.6 वादी स्वर

राग का सबसे प्रमुख स्वर वादी स्वर कहलाता है। राग में इसका स्थान अपने दरबार में राजा के समान ही महत्त्वपूर्ण होता है। इसे 'जीव स्वर' भी कहा जाता है। अन्य शब्दों में, यह राग का सबसे महत्त्वपूर्ण अवयव होता है। यह राग को गुणधर्म प्रदान करता है। राग के प्रस्तुतिकरण में स्वर समूहों में यह स्वर सर्वाधिक प्रयुक्त अथवा प्रदर्शित होता है। उदाहरण के रूप में, राग यमन का वादी स्वर '**ग**' है।

2.2.7 संवादी स्वर

वादी के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण स्वर संवादी स्वर कहलाता है। वादी तथा संवादी स्वरों के बीच का अंतराल चार अथवा पाँच स्वरों का होता है, उदाहरण के लिये, राग यमन का संवादी स्वर '**नि**' है।

2.2.8 अनुवादी स्वर

वादी तथा संवादी स्वरों के अतिरिक्त राग के अन्य सभी स्वर अनुवादी, अर्थात् जो (वादी तथा संवादी का) अनुगमन करते हैं, कहलाते हैं। यद्यपि राग में इनकी भूमिका वादी तथा संवादी स्वरों का अनुगमन करना है, अनुवादी स्वरों का राग में अपना अलग महत्त्व है। राग के प्रस्तुतिकरण में ये स्वर भिन्न प्रकार के विनिमय तथा संयोजन के द्वारा तत्क्षण निर्माण में मदद करते हैं। राग यमन में **सा, रे, म॑, प** तथा **ध** अनुवादी स्वर हैं।

2.2.9 विवादी स्वर

विवादी स्वर वे स्वर होते हैं जो किसी राग में सामान्य स्वरों की भांति प्रयुक्त नहीं किये जाते, अपितु स्वरों के कुछ संयोजनों में सम्मिलित कर दिये जाते हैं। राग के सौंदर्य में

वृद्धि करने हेतु विवादी स्वरों का प्रयोग न्यून रूप से होता है। विवादी स्वर का अधिक प्रयोग राग का गुणधर्म बदल सकता है। उदाहरण के लिये, राग बिहाग के दिये गये स्वर समूह में तीव्र 'म॑' विवादी स्वर के रूप में प्रयुक्त है, यथा – **'म॑' प ग म ग**

2.2.10 समय

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति की एक निजी विशेषता है– रागों के लिये ऋतु तथा समय का निर्धारित होना। भिन्न-भिन्न रागों के गायन के लिये रात तथा दिन को आठ भागों में विभाजित करके राग समय या कालावधि सुनिश्चित किये गये हैं। इन्हें **'प्रहर'** कहा जाता है। प्रत्येक की तीन घंटों की अवधि से युक्त दिन तथा रात के चार-चार प्रहर होते हैं जिनमें स्वरों के तीन वर्ग बनाकर रागों का वर्गीकरण किया जाता है (1) रेध शुद्ध युक्त राग, (2) रेध कोमल युक्त राग, (3) गनी कोमल युक्त राग

पाठगत प्रश्न 2.3

1. **'आरोह'** शब्द को परिभाषित कीजिये।
2. **'पकड़'** का क्या अर्थ है?
3. **राग** के सबसे महत्त्वपूर्ण स्वर का उल्लेख कीजिये।
4. **वादी** तथा **संवादी स्वरों** के बीच का अंतराल क्या होता है?
5. **अनुवादी स्वरों** से आप क्या समझते हैं?

आपने क्या सीखा

राग की अवधारणा हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की निजी विशेषता है तथा लगभग 2000 वर्ष पुरानी है। राग शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'रंज्' धातु से हुई है, जिसका अर्थ है रंगना अथवा रंजकता प्रदान करना।

राग को सांगीतिक स्वरों के उस स्वरानुक्रम विन्यास के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका सुनिश्चित गुणधर्म है तथा जो विशेष नियमों के द्वारा संचालित है। अपने वास्तविक अर्थ में राग का सर्व प्रथम उल्लेख **मतंग** द्वारा रचित ग्रंथ **'बृहद्देशी'** में हुआ है। हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत के प्राचीनतम अवयवों में से एक इसमें समय

के साथ कई परिवर्तन आये हैं, परन्तु इसकी मूल विशेषतायें कभी भी विवादास्पद नहीं रही हैं। राग की प्रमुख आवश्यकता श्रोताओं को मनोरंजन प्रदान करना है। राग के तत्त्व हैं. **ठाठ, राग जाति, आरोह, अवरोह, पकड़ वादी स्वर, संवादी स्वर, अनुवादी स्वर, विवादी स्वर** तथा **समय**।

टिप्पणी

पाठांत प्रश्न

1. '**राग**' शब्द से आप क्या समझते हैं?
2. हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में '**राग**' की अवधारणा के विषय में विस्तारपूर्वक लिखें।
3. **राग** के निर्माण में किन नियमों का प्रयोग होता है?
4. **राग** के मुख्य तत्त्व कौन-कौन से हैं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

2.1

1. रञ्ज्।
2. श्रोताओं को मनोरंजन प्रदान करना।
3. रागों की उत्पत्ति ठाठों से होती है।
4. षड्ज।
5. मध्यम तथा पंचम।

2.2

1. आरोहात्मक क्रम से व्यवस्थित सात स्वरों का सांगीतिक सप्तक ठाठ कहलाता है।

2. ठाठ से ही रागों की उत्पत्ति होती है।

3. दस।

4. सात स्वर चढ़ते क्रम में तथा सात उतरते क्रम में।

5. पाँच स्वर चढ़ते क्रम में तथा सात उतरते क्रम में।

2.3

1. चढ़ते हुए क्रम में स्वरों का समुच्चय आरोह कहलाता है।

2. प्रत्येक राग के लिये निजी रूप से स्वरों का एक सुनिश्चित अनुक्रम **पकड़** कहलाता है।

3. वादी।

4. वादी तथा संवादी स्वरों के बीच का अंतराल चार अथवा पाँच स्वरों का होता है।

5. वादी तथा संवादी स्वरों के अतिरिक्त राग के अन्य सभी स्वर अनुवादी, अर्थात् जो (वादी और संवादी का) अनुगमन करते हैं, कहलाते हैं।

पारिभाषिक शब्दावली

राग – स्वर और वर्ण से विभूषित नियमबद्ध रचना जो मनुष्यों के मन का रंजन करे, राग कहलाती है।

आरोह – चढ़ते हुए क्रम में स्वरों का समुच्चय **आरोह** कहलाता है।

अवरोह – उतरते हुए क्रम में स्वरों का समुच्चय **अवरोह** कहलाता है।

पकड़ – प्रत्येक राग के लिए निजी रूप से स्वरों का एक सुनिश्चित अनुक्रम **पकड़** कहलाता है।

वादी स्वर – राग का सबसे प्रमुख स्वर वादी स्वर कहलाता है।

टिप्पणी

संवादी स्वर – वादी स्वर के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण स्वर संवादी कहलाता है।

अनुवादी स्वर – वादी तथा संवादी स्वरों के अतिरिक्त राग के अन्य सभी स्वर अनुवादी कहलाते हैं।

उपयोगी गतिविधियाँ

1. विभिन्न विख्यात कलाकारों के द्वारा प्रस्तुत निर्धारित रागों को सुनें।

2. पं. विष्णु नारायण भातखंडे के द्वारा रचित क्रमिक पुस्तक तालिका भाग I तथा II का अध्ययन कीजिए।

242hi03

3

ताल के तत्त्व

चित्र, मूर्ति एवं स्थापत्य जैसी दृश्य कलाओं का आस्वादन संरचना प्रक्रिया के पश्चात् होता है। इनकी तुलना में संगीत एक ऐसी कला है, जिसका आस्वादन संरचना प्रक्रिया के साथ-साथ होता है। संगीत का निर्धारण श्रव्य रूपों की गति के द्वारा होता है जिससे कल्पित अथवा प्रतीयमान समय का आभास होता है। जिस प्रकार दृश्य कलाओं के लिए स्थान के माप की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार संगीत कला के लिये समय के माप की आवश्यकता होती है। हिन्दुस्तानी संगीत के अंतर्गत बंदिश किसी विशेष ताल अथवा निश्चित अंतरालों के गति क्रम के द्वारा प्रतिष्ठित होती है। ताल के माध्यम से एक अंतराल के गुजरने पर दूसरे अंतराल का आगमन होने के कारण गति का आभास होता है। इन अंतरालों के बीच की अवधि समय के माप का बोध कराती है। यह प्रतीयमान समय होता है जो सांगीतिक रचना के अंतर्गत निर्मित होता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के पश्चात आप–

- ताल की अवधारणा एवं अर्थ को स्पष्ट कर सकेंगे;
- ताल को परिभाषित कर सकेंगे;
- ताल के प्राचीन एवं आधुनिक तत्त्वों की गणना कर प्रस्तुत कर सकेंगे;
- ताल के प्रस्तुत तत्त्वों का विश्लेषण कर सकेंगे;
- निर्धारित तालों के बोलों का उच्चारण कर सकेंगे।

टिप्पणी

3.1 ताल की अवधारणा एवं अर्थ

बंदिश के अंतर्गत ताल के द्वारा सांगीतिक समय के गुजरने का संकेत मिलता है। यह प्रक्रिया गति का आभास कराती है जिससे संगीत को एक सजीव रूप की भांति प्रकृति प्राप्त होती है। हिन्दुस्तानी संगीत में ताल को वह नींव माना जाता है, जिस पर संगीत की स्थापना होती है। राग की रचना एवं बढ़त ताल के नियमित चक्र के अंतर्गत प्रस्तुत होती है। यद्यपि ताल का चक्र निश्चित होता है, तथा प्रत्येक चक्र की समाप्ति पर ताल के सम पर भिन्न-भिन्न प्रकार से पहुँचना स्वयं एक उद्देश्य बन जाता है।

3.2 ताल की परिभाषा

'ताल' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत में **'तल्'** धातु से बताई जाती है, जिसका अर्थ वह आधार अथवा धुरी है जिस पर कोई वस्तु प्रतिष्ठित होती है। **संगीत रत्नाकर** में ताल को परिभाषित करते हुए पं. शार्ङ्गदेव कहते हैं, 'ताल' शब्द तल् धातु में धञ् प्रत्यय से बनता है, जिसका अर्थ है वस्तु को प्रतिष्ठित करना। उसी प्रकार, गीत, वाद्य एवं नृत्य को प्रतिष्ठित करने वाला आधार 'ताल' है।

पाठगत प्रश्न 3.1

1. एक प्रत्यक्ष कला के रूप में संगीत का आस्वादन किस प्रकार होता है।
2. दृश्य कलाओं का आस्वादन किस प्रकार होता है?
3. दृश्य कलाओं के संदर्भ में जिस प्रकार स्थान के माप की आवश्यकता होती है, इसकी तुलना में प्रत्यक्ष कलाओं में किसकी आवश्यकता होती है?
4. वह आधार क्या है जिस पर गीत, वाद्य तथा नृत्य प्रतिष्ठित हैं?

3.3 ताल के आधुनिक तत्त्व

प्राचीन काल में ताल के दस तत्त्व प्रयोग में थे जिन्हें सामूहिक रूप से **'ताल दश प्राण'** कहा जाता था, यथा- **काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति** एवं **प्रस्तार**। ताल के आधुनिक तत्त्वों में **आवर्तन, मात्रा, लय, बोल, ठेका, विभाग, सम, खाली** एवं **ताली** का समावेश है। किसी भी ताल को पहचानने व समझने के लिये इन तत्त्वों की जानकारी का होना आवश्यक है। इनका विवरण नीचे दिया जा रहा है:-

3.3.1 आवर्तन- प्रस्तुत ताल का सम्पूर्ण चक्र आवर्तन कहलाता है। इसकी पुनरावृत्ति एक से अधिक बार हो सकती है। उदाहरण के रूप में, तीन ताल का आवर्तन इस प्रकार है।

टिप्पणी

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
ठेका/बोल	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
	x				2				0				3			

3.3.2 मात्रा – ताल की वह इकाई जो सांगीतिक समय के माप का निर्देश करे, मात्रा कहलाती है। भिन्न तालों में मात्राओं की समान संख्या सम्भव है। उदाहरण के लिये, चौताल तथा एकताल, दोनों में ही बारह मात्राएं हैं। परन्तु इन दोनों का प्रयोग संगीत की भिन्न विधाओं में होता है। चौताल का प्रयोग ध्रुपद में पखावज पर तथा एकताल का प्रयोग खयाल में तबले पर किया जाता है। इनमें प्रयुक्त बोल कथित विधाओं के अनुरूप होते हैं। चौताल तथा एकताल में प्रयुक्त मात्रा व बोलों का लिपिबद्ध रूप निम्नांकित है:

चौताल

(पखावज)

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ठेका/बोल	धा	धा	दिं	ता	किट	धा	दिं	ता	ति	ट	गदि	गन
	x		0		2		0		3		4	

एकताल

(तबला)

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ठेका/बोल	धिं	धिं	धागे	तिर किट	तू	ना	कत	–ता	धागे	तिर किट	धिं	ना
	x		0		2		0		3		4	

3.3.3 लय – सांगीतिक समय की गति या रफ्तार को **लय** कहा जाता है। **लय** तीन प्रकार की होती है:–

विलंबित, मध्य तथा **द्रुत**

(i) **विलंबित लय** – धीमी गति की लय को विलंबित कहते हैं।

(ii) **मध्य लय** – विलंबित से दोगुनी जलद गति की लय को मध्य कहते हैं।

(iii) **द्रुत लय** – मध्य से दोगुनी जलद गति की लय को द्रुत कहते हैं।

3.3.4 बोल – ताल बजाते समय उत्पन्न ध्वनि को दर्शाने वाले शब्दों को बोल कहते हैं। ये निरर्थक अक्षर होते हैं, जैसे धा, धिं, तिरकिट इत्यादि। प्राचीन समय में इनके लिये 'पाटाक्षर' शब्द का प्रयोग होता था।

टिप्पणी

3.3.5 ठेका – बोलों अथवा ताल के शब्दों के संपूर्ण समूह से **ठेका** बनता है। जिस प्रकार सांगीतिक रचना या बंदिश की बढ़त होती है, उसी प्रकार ठेका ताल की मूल संरचना है जिसे 'टुकड़े' एवं 'तिहाई' के माध्यम से आगे बढ़ाया जा सकता है।

3.3.6 विभाग – ताल का ठेका विभिन्न खंडों में विभाजित होता है, जिन्हें 'विभाग' कहते हैं। ताल की मात्राओं की संख्या के आधार पर भिन्न तालों में विभागों की संख्या भिन्न होती है। उदाहरण स्वरूप, सोलह मात्रा से युक्त तीन ताल में चार विभाग होते है, तथा सात मात्रा से युक्त रूपक में तीन विभाग होते हैं। यह आवश्यक नहीं कि विभागों के बीच का अंतराल समान हो। जैसे कि ऊपर दिये उदाहरण के अनुसार तीन ताल में चार विभाग समान अंतराल के हैं। प्रत्येक की चार मात्राएं हैं, यथा–

1	2	3	4	|	5	6	7	8	|	9	10	11	12	|	13	14	15	16
धा	धिं	धिं	धा	|	धा	धिं	धिं	धा	|	धा	तिं	तिं	ता	|	ता	धिं	धिं	धा
x					2					0					3			

दूसरी ओर रूपक ताल में दो विभाग दो–दो मात्राओं से युक्त हैं व एक तीन मात्राओं से युक्त है, यथा–

1	2	3	|	4	5	|	6	7
तिं	तिं	ना	|	धिं	ना	|	धिं	ना
0				1			2	

3.3.7 सम – ताल की वह प्रारम्भिक मात्रा जिस पर संपूर्ण गति क्रम का बल दिया जाता है, सम कहलाती है। भातखंडे स्वरलिपि पद्धति के अनुसार इसका चिह्न (x) होता है। यहाँ यह ध्यान देने योग्य है, कि पहले बताए गये रूपक ताल के उदाहरण में सम पहली मात्रा पर बताया गया है, परन्तु मौखिक रूप से ताल प्रस्तुत करने पर इसे खाली के समान दर्शाया जाता है। इसे अपवाद स्वरूप समझना चाहिये क्योंकि सामान्यतया, सम को ताली के समान दर्शाया जाता है। क्रियात्मक रूप से तबला वादन एवं गायन दोनों साथ ही साथ इसी मात्रा से आरम्भ होते हैं, अतः इसे सम बताया गया है।

3.3.8 खाली – ताल की वह मात्रा जो गति क्रम के चक्र को संतुलित करने हेतु सम के प्रतितुल्य का काम करती है, खाली कहलाती है। भातखंडे स्वरलिपि पद्धति के अनुसार इसका चिह्न (0) होता है। हस्त मुद्राओं के द्वारा ताल के ठेके के मौखिक रूप से उच्चारण करते समय खाली को हथेली ऊपरी दिशा की ओर किये हुए दर्शाया जाता है। खाली एक से अधिक हो सकती है।

टिप्पणी

3.3.9 ताली– ताल की वह मात्रा जो आघात के स्थान का संकेत करती है, ताली कहलाती हैं। सामान्यतया ये एक से अधिक होती हैं, तथा विभाग की आरम्भिक मात्राएं होती हैं। इस प्रकार, सम, पहली, ताली तथा खाली को छोड़कर अन्य की संख्या 2, 3 आदि होती है।

पाठगत प्रश्न 3.2

1. ताल की वह इकाई जो सांगीतिक समय के माप का निर्देश करती है, क्या कहलाती है?
2. सांगीतिक समय की गति या रफ्तार को क्या कहते हैं?
3. किसी प्रस्तुत ताल का संपूर्ण चक्र जिसकी पुनरावृत्ति एक से अधिक बार हो सकती है, किस नाम से जाना जाता है?
4. ताल बजाते समय उत्पन्न ध्वनि को दर्शाने वाले शब्दों को क्या कहते हैं?
5. बोलों अथवा ताल के शब्दों के संपूर्ण समूह से क्या बनता हैं?
6. ताल की वह प्रारंभिक मात्रा जिस पर संपूर्ण गतिक्रम का बल दिया जाता है, क्या कहलाती है?

3.4 निर्धारित तालों के बोल

(क) तीन ताल

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13	14	15	16
ठेका/बोल	धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
	X				2				0				3			

(ख) एकताल

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12
ठेका/बोल	धिं	धिं	धागे	तिरकिट	तू	ना	कत	ता	धागे	तिरकिट	धिं	ना
	X		0		2		0		3		4	

(ग) दादरा

मात्रा	1	2	3	4	5	6
ठेका/बोल	धा	धी	ना	धा	ती	ना
	X			0		

टिप्पणी

(घ) कहरवा

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8
ठेका/बोल	धा	गे	न	ति	न	क	धिं	न
	x		2		0		3	

(ङ) झपताल

मात्रा	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
ठेका/बोल	धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना
	x		2			0		3		

पाठगत प्रश्न 3.3

1. **सम** के अतिरिक्त तीनताल में अन्य किन मात्राओं पर ताली आती है?
2. **एकताल** में मात्राओं की क्या संख्या है?
3. **दादरा** में खाली किस मात्रा पर आती है?
4. **झपताल** में मात्राओं की क्या संख्या है?

आपने क्या सीखा

हिन्दुस्तानी संगीत का एक अभिन्न अंग **'ताल'** है, जिसमें गतिक्रम निहित है। गतिक्रम हृदय-गति एवं श्वसन जैसी जीवन प्रक्रियाओं में स्वभावतः विद्यमान है। अतः यह जीवन की स्वाभाविक गति को प्रतीकात्मक दृष्टि से सांगीतिक रूप में रूपान्तरित करता है। यह गति एक प्रतीयमान समय का आभास कराती है। ताल के एक अंतराल के गुजरने पर तथा दूसरे अंतराल का आगमन होने पर प्रतीयमान समय का माप होता है, जो सांगीतिक रचना के अंतर्गत निर्मित होता है।

ताल वह धुरी है जिस पर हिन्दुस्तानी संगीत की स्थापना हुई है। इसके तत्त्वों में **आवर्तन, मात्रा, लय, बोल, ठेका, विभाग, सम, खाली,** तथा **ताली** का समावेश है।

पाठांत प्रश्न

1. **ताल** के माध्यम से गति का आभास किस प्रकार होता है?

2. संगीत रत्नाकर के अनुसार ताल को परिभाषित कीजिये। प्राचीन समय में ताल के तत्त्व क्या थे?

3. क्या भिन्न तालों में मात्राओं की संख्या समान हो सकती है? उदाहरण सहित दर्शायें।

4. **लय** किसे कहते हैं?

5. क्या **ताल** के विभाग असमान अंतराल के हो सकते हैं? उदाहरण सहित दर्शायें।

6. **खाली** तथा **ताली** से आप क्या समझते हैं?

7. निम्न में से किन्हीं दो के बोलों का वर्णन कीजिये- **तीन ताल, कहरवा, दादरा, झपताल, एकताल**

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

3.1

1. संगीत का आस्वादन संरचना प्रक्रिया के साथ-साथ होता है।
2. दृश्य कलाओं का आस्वादन संरचना प्रक्रिया के पश्चात् होता है।
3. दृश्य कलाओं के संदर्भ में जिस प्रकार स्थान के माप की आवश्यकता होती है, इसकी तुलना में संगीत कला में समय के माप की आवश्यकता होती है।
4. ताल वह आधार है जिस पर गीत, वाद्य तथा नृत्य प्रतिष्ठित हैं।

3.2

1. मात्रा।
2. लय।
3. आवर्तन।
4. बोल।
5. ठेका।
6. सम।

3.3

1. पाँच तथा तेरह।
2. बारह।
3. चौथी।
4. दस।

पारिभाषिक शब्दावली

1. **बंदिश** – सांगीतिक रचना।
2. **ध्रुपद** – हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत विधा जिसकी संगत पखावज के साथ होती है।
3. **ख्याल** – हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत विधा जिसकी संगत तबले के साथ होती है।
4. **प्रत्यक्ष कला** – प्रदर्शनकारी कला जिसका आस्वादन रचना प्रक्रिया के दौरान किया जाता है।
5. **धुरी** – एक निश्चित बिंदु जिस पर कोई वस्तु टिकी हो।
6. **तिहाई** – स्वरों अथवा बोलों का विशेष समूह जिसे तीन बार प्रस्तुत किया जाये।
7. **टुकड़े** – ठेके के अंतर्गत नवीनता लाने के लिये तबले पर बजाये जाने वाले बोलों के समूह।
8. **दृश्य कला** – वह कला जिसका आस्वादन (नेत्रों के द्वारा) रचना प्रक्रिया के पश्चात् किया जाये।
9. **प्रतीयमान समय** – वास्तविक समय नहीं, अपितु सांगीतिक रूप के अंतर्गत निर्मित समय।

242hi04

4

विधाओं का अध्ययन– ध्रुपद तथा धमार

ध्रुपद तथा **धमार** हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत की वे प्राचीनतम विधाएँ हैं, जो अभी भी प्रचलित हैं। ऐसा माना जाता है कि इन विधाओं की जड़ें प्राचीन रचनात्मक विधा '**प्रबन्ध**' में हैं। इन विधाओं में राग की शुद्धता पर विशेष बल दिया जाता है।

परवावज की संगति में गाये जाने वाले इन विधाओं में ध्रुपद का गायन चौताल, सूल ताल, ब्रह्म ताल इत्यादि के साथ तथा धमार का गायन धमार ताल के साथ होता है। ध्रुपद के साहित्यिक पक्ष के अंतर्गत देवी–देवताओं तथा आश्रयदाता राजाओं के गुण–गान, जबकि धमार के साहित्यिक पक्ष के अंतर्गत होली का वर्णन होता है। ये दोनों की विधायें 16वीं शताब्दी के लगभग अत्यंत प्रचलित थीं, जिसे इन विधाओं का स्वर्ण युग माना जाता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् आप–

- **ध्रुपद** तथा **धमार** के संक्षिप्त इतिहास का वर्णन कर सकेंगे;
- **ध्रुपद** तथा **धमार** विधाओं को परिभाषित कर सकेंगे;
- इन विधाओं की दूसरी विधाओं से पहचान कर सकेंगे;
- **ध्रुपद** गायन की विविध वाणियों के नामों का उल्लेख कर सकेंगे;
- कुछ महान **ध्रुपद** गायकों का उल्लेख कर सकेंगे।

4.1.1 ध्रुपद

'ध्रुपद' अथवा 'ध्रुवपद' शब्द की व्युत्पत्ति दो संस्कृत शब्दों 'ध्रुव' तथा 'पद' से हुई है, जिनका अर्थ क्रमशः 'स्थायी रूप से स्थित या अटल' तथा 'साहित्यिक पक्ष या

टिप्पणी

बोल' है। अतः ध्रुपद को उस विधा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जिसमें साहित्यिक बोल कुछ स्वरों एव ताल पर स्थायी रूप से स्थित (रचित) होते हैं। देवी, देवताओं, राजाओं व बादशोहा की वीरता, गरिमा या प्रशंसा के साथ-साथ ताल व नाद आदि के प्रसंगों से युक्त बन्दिशें ध्रुपद के रूप में गाई जाती हैं। इस विधा का गायन पखावज की संगत में होता है। ध्रुपद में जिन तालों का प्रयोग होता है, वे हैं- **चौताल, सूल, तीव्रा, ब्रह्म ताल** इत्यादि।

4.1.2 धमार

धमार भी **ध्रुपद** के समान रचनात्मक विधा है, जिसका गायन पखावज की संगत में होता है। **धमार** सदैव चौदह मात्रा के **'धमार' ताल** में बद्ध होता है। इसमें अधिकतर होली पर्व से सम्बन्धित पद होते हैं, राधा कृष्ण के होली खेलने से सम्बन्धित लीला पर होते हैं परन्तु मध्ययुग में विकसित होने के कारण राजाओं व बादशाहों की वीरता व शौर्य से सम्बन्धित पद भी धमार के रूप में गाए जाते हैं।

पाठगत प्रश्न 4.1

1. **ध्रुव- पद** का क्या अर्थ है?
2. **धमार** में किस प्रकार का साहित्य होता है।
3. **ध्रुपद** - **धमार** के साथ जिस ताल वाद्य की संगत होती है, उसका नाम बताइये।
4. धमार के साथ कौन-सी ताल बनाई जाती है।

4.2 इतिहास एवं विकास

ऐसा माना जाता है कि ध्रुपद का विकास ध्रुव प्रबन्धों से हुआ है। अपने आधुनिक स्वरूप में ध्रुपद 15वीं/16वीं शताब्दी से प्रचार में रहा है तथा अभी भी प्रचलित है। इसके प्राचीन स्वरूप में स्वर, लय तथा पद (स्वरानुक्रम, गतिक्रम तथा साहित्यिक पक्ष) तीनों ही अवयवों का समान महत्त्व था। चूँकि साहित्यिक पक्ष या पदों की रचना पूर्णतया स्वर तथा ताल पर स्थायी रूप से स्थित थी, अतः इस विधा को ध्रुवपद कहा गया। बाद में ध्रुवपद में कुछ परिवर्तन हुए और शास्त्रीय संगीत की एक प्रमुख विधा के रूप में 'ध्रुपद' प्रचलित हो गया।

16वीं शताब्दी में ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर ने इस विधा को प्रोत्साहन दिया। अपने ग्रंथ **'मानकुतूहल'** में उन्होंने ध्रुपद की विशेष रूप से चर्चा की है। उनके अनुसार ध्रुपद का साहित्य 'देशी' या मध्य भारत की लोक भाषा, ब्रज भाषा में लिखा

जाता था। संस्कृत अथवा हिन्दी में भी ध्रुपद उपलब्ध हैं। ध्रुपद के साहित्य में अधिकतर देवताओं तथा आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा होती है, जबकि धमार के साहित्य में रंगों के त्योहार, होली का वर्णन होता है। बंदिश चार भागों में विभाजित होती है, यथा **स्थायी, अंतरा, संचारी** तथा **आभोग** परन्तु कुछ बंदिशों में केवल दो ही भाग– **स्थायी** तथा **अंतरा** होते है। राजा मानसिंह तोमर के अतिरिक्त बादशाह अकबर ने भी ध्रुपद को विशेष प्रोत्साहन प्रदान किया। मियां तानसेन, नायक गोपाल तथा नायक बख़्शू 16वीं शताब्दी के कुछ महान ध्रुपद गायक थे। इस काल को ध्रुपद का स्वर्ण युग माना जाता है, जब ध्रुपद गायन उत्तर भारत के विभिन्न भागों में प्रचलित हुआ।

ध्रुपद गायन की चार 'वाणियाँ' अथवा शैलियाँ हैं, जिनके नाम हैं:

1. **गौवरहार**
2. **खंडार**
3. **डागर**
4. **नौहार**

ऐसा माना जाता है कि ग्वालियर के मियां तानसेन ने **गौरहार बानी**, डागर (दिल्ली के निकट) के ब्रजचंद ने **डागर बानी**, खंडार के राजा सम्मोखन सिंह ने **खंडार बानी** तथा नौहार के श्रीचंद ने **नौहार बानी** ईज़ाद की।

पाठगत प्रश्न 4.2

1. किस प्राचीन रचनात्मक विधा में **ध्रुपद** की जड़ें हैं?
2. ध्रुपद किन शताब्दियों में सर्वाधिक प्रचलित था?
3. **ध्रुपद** तथा **धमार** के दो कौन-से राजा महान आश्रयदाता थे?
4. **ध्रुपद** की बंदिश के चार भागों का उल्लेख कीजिये।
5. **ध्रुपद** गायन की चार वाणियों के नाम बताइये।
6. सोलहवीं सदी के चार महान ध्रुपद गायकों का नाम लिखिए।

4.3 ध्रुपद तथा धमार गायन की विशेषताएँ

ध्रुपद तथा धमार, दोनों के गायन की विशिष्ट शैली है। सर्वप्रथम राग को निरर्थक अक्षरों, जैसे- **नोम, तोम, देरे, न** इत्यादि के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। गायन का यह भाग **'आलाप'** कहलाता है तथा इसमें तालयुक्त संगत नहीं होती है। आलाप के अंत में वाद्य संगीत के 'जोड' विन्यास की भांति तेज गतिक्रम में निरर्थक अक्षरों का गायन होता है। तत्पश्चात बंदिश का गायन होता है।

टिप्पणी

बंदिश का गायन पदों के समूहों को लेकर विविध प्रकार से तत्क्षण निर्माण करके होता है, यह भाग **'उपज'** कहलाता है, जो ध्रुपद गायन की निजी विशेषता है। ये तत्क्षण निर्माण मूल गति पर पुन: आने से पहले उसके **दोगुन, तिगुन** तथा **चौगुन** आदि के प्रयोग से होता है। **धमार** का प्रस्तुतिकरण भी इसी प्रकार होता है।

ध्रुपद - धमार गायन में ताल एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष है। इनके साथ तालयुक्त संगत पखावज के द्वारा होती है। ध्रुपद गायन में जिन तालों का अधिकतर प्रयोग होता है, वे हैं - **चौताल, मत्त, ब्रह्म, लक्ष्मी, सूल, तीव्रा,** इत्यादि। धमार वस्तुत: चौदह मात्रा युक्त धमार ताल में बद्ध होता है।

कुछ महान ध्रुपद गायकों के नाम

प्राचीन ध्रुपद गायक

बहराम खाँ, नसीरुद्दीन खाँ, जदुभट्ट, गोपेश्वर बैनर्जी, रहीमुद्दीन खाँ डागर, नसीर मोइनुद्दीन खाँ डागर, अमीनुद्दीन खाँ डागर, जहीरुद्दीन खाँ डागर, फ़ैयाजुद्दीन खाँ डागर, राम चतुर मलिक, सियाराम तिवारी, चन्दन चौबे इत्यादि।

आधुनिक ध्रुपद गायक

रहीम फहीमुद्दीन डागर, वसीफुद्दीन डागर, बहउद्दीन डागर, फैयाज वसीफुद्दीन डागर, विदुर मलिक, प्रेम कुमार मलिक, अभय नारायण मलिक, फाल्गुनी मित्र, ऋत्विक सान्याल इत्यादि।

पाठगत प्रश्न 4.3

1. **ध्रुपद** तथा **धमार** में आलाप के अंतर्गत राग को किस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है?
2. **आलाप** का अंत किस प्रकार होता है?
3. **उपज** किसे कहते हैं?
4. **धमार** किस ताल में बद्ध होता है?

आपने क्या सीखा

1. **ध्रुपद** तथा **धमार** हिन्दुस्तानी संगीत की वे प्राचीनतम विधायें हैं, जो आज भी प्रचलित हैं।

2. **ध्रुपद** के साहित्य में देवताओं अथवा आश्रयदाता राजाओं की प्रशंसा होती है।
3. **धमार** की विषय सामग्री रंगों के त्योहार होली के विवरण से युक्त होती है।
4. **ध्रुपद** गायन में जिन तालों का प्रयोग होता है, वे हैं-**चौताल, सूलताल, तीव्रा, मत्त, ब्रह्म** तथा **रूद्र** ताल।
5. **धमार** वस्तुत: धमार ताल में बद्ध होता है।
6. दोनों विधाओं का गायन ताल वाद्य पखावज की तालयुक्त संगत के साथ होता है।

पाठांत प्रश्न

1. ध्रुपद तथा धमार को परिभाषित कीजिये।
2. ध्रुपद तथा धमार की भाषा एवं साहित्य पर चर्चा कीजिये।
3. ध्रुपद तथा धमार के गायन में जिन तालों का प्रयोग होता है, उनके नाम बताइये।
4. ध्रुपद-धमार के गायन में गतिक्रम की भूमिका का वर्णन कीजिये।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

4.1

1. '**ध्रुव**' का अर्थ है स्थायी रूप से स्थित या अटल तथा 'पद' का अर्थ है साहित्यिक पक्ष या बोल। अत: ध्रुव-पद का अर्थ है वह साहित्यिक रचना जो स्वरों और ताल पर स्थायी रूप से स्थित (रचित) हो।
2. धमार में अधिकतर होली तथा राजाओं व बादशाहों की वीरता व शौर्य से सम्बन्धित साहित्य होता है।
3. पखावज।
4. धमारताल।

4.2

1. प्रबन्ध।
2. धमार
3. राजा मानसिंह तोमर तथा बादशाह अकबर।

4. स्थायी, अंतरा, संचारी तथा आभोग।
5. गोवरहार, खंडार, नौहार तथा डागर।
6. बहराम खाँ, नसीसद्दीन खाँ, रहीम फहीमुद्दीन डागर, ऋत्विक सान्यल

4.3

1. आलाप के अंतर्गत राग को निरर्थक अक्षरों, जैसे – **नोम, तोम, देरे, ना** इत्यादि के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है।
2. आलाप के अंत में वाद्य संगीत के 'जोड' विन्यास की भांति तेज गतिक्रम में निरर्थक अक्षरों का गायन होता है।
3. बंदिश के पदों के प्रयोग से राग में तत्क्षण निर्माण उपज कहलाता है।
4. धमार चौदह मात्रा से युक्त धमार ताल में बद्ध होता है।

पारिभाषिक शब्दावली

1. प्रबन्ध – एक प्राचीन रचनात्मक विधा।
2. पखावज – एक ताल वाद्य जो गायन की दोनों विधाओं ध्रुपद तथा धमार के साथ संगत के रूप में बजाया जाता है।
3. निरर्थक अक्षर – बिना अर्थ के प्रतीत होने वाले अक्षर।
4. आलाप – बिना तालयुक्त संगत के राग का पहले धीमी गति से फिर तीव्र गति से क्रमिक रूप से विस्तार।
5. जोड – वाद्य संगीत का तेज गतिक्रम से युक्त विन्यास जिसके माध्यम से आलाप के अंत में निरर्थक अक्षरों का गायन होता है।
6. उपज – बंदिश के पदों अथवा शब्दों की मदद से राग में तत्क्षण निर्माण।

242hi05

5

हिन्दुस्तानी संगीत की स्वरलिपि पद्धति

भारतीय संगीत मनोधर्म पर आधारित है। अपनी कला से ही संगीतज्ञों ने विभिन्न रागों व तालों में भावनात्मक अभिव्यक्ति के लिए काव्य या पद रचनाओं को आबद्ध करके उन्हें **ख्याल, ध्रुपद, ठुमरी** आदि गेय विधाओं के रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार के प्रस्तुतिकरण संगीतकारों के साथ ही लुप्त न हो जाएँ इसीलिए उन्हें लिखित स्वरूप दे कर संरक्षित करने के प्रयास में समय-समय पर भिन्न-भिन्न चिन्हों से युक्त स्वरलिपियाँ प्रकाश में आईं। स्वरलिपियों के माध्यम से ही पूर्व संगीतज्ञों द्वारा रचित बंदिशों का संग्रह आज उपलब्ध हो सका है। अतः स्वरलिपि का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के पश्चात आप–

- स्वरलिपि की आवश्यकता का वर्णन कर सकेंगे;
- वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक स्वरलिपि के विकास का उल्लेख कर सकेंगे;
- आधुनिक काल में स्वरलिपि के महत्त्व को प्रतिपादित कर सकेंगे;
- वर्तमान समय में प्रचलित विष्णु नारायण भातखंडे स्वरलिपि पद्धति का सामान्य ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

5.1 स्वरलिपि – अर्थ एवं अवधारणा

किसी भी भाषा को लेखन द्वारा अभिव्यक्त करना 'लिपि' कहलाता है। जिस प्रकार किसी भाषा की 'लिपि' के रूप में हिन्दी, उर्दू, तमिल आदि के लिए अलग-अलग

रेखाओं, बिन्दुओं तथा विभिन्न प्रकार के चिह्नों का प्रयोग किया जाता है उसी प्रकार संगीत में भी गायन वादन हेतु प्रयुक्त किए जाने वाले शुद्ध, कोमल, तीव्र स्वरों, मन्द्र-मध्य व तार सप्तकों तथा तीनताल, झपताल, एकताल आदि अनेकानेक तालों को लिखित रूप में दर्शाने के लिए जिन चिन्हों व रेखाओं या अंकों आदि का प्रयोग किया जाता है उसे ही सामान्य रूप से 'स्वरलिपि' कहा जाता है। स्वरलिपि में केवल स्वर ही नहीं वरन अक्षर, ताल आदि के साथ-साथ **कण, मींड़, गमक** आदि संगीत के तत्वों से सम्बन्धी चिन्हों का भी समन्वय होता है।

पाठगत प्रश्न 5.1

1. **स्वरलिपि** किसे कहते हैं?

2. **स्वरलिपि** में चिन्हों के माध्यम से क्या दर्शाया जा सकता है?

5.2 स्वरलिपि की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

भारत में गुरू-शिष्य परम्परा के रूप में संगीत की शिक्षण प्रक्रिया सदा मौखिक ही रही है। संगीत की इस शिक्षण प्रक्रिया में स्वर व लय के असंख्य सूक्ष्म प्रयोगों को पूर्णत: मौखिक रूप से गा-बजा कर ही सिखाया जा सकता है। यदि इन प्रयोगों को लिखने की चेष्ठा की जाए तो यह कदापि सम्भव नहीं है किन्तु फिर भी स्वरों का ऊँचा-नीचापन, मन्द्र या तार सप्तक के स्वरों का प्रयोग दर्शाने के लिए वैदिक काल से ही विद्वानों द्वारा प्रयत्न किए जाते रहे हैं जिनका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में उपलब्ध होता है।

वैदिक काल में **'उदात्त'**, **'अनुदात्त'** व **'स्वरित'** तीन स्वरों का उल्लेख मिलता है। उदात्त अर्थात ऊँचा, अनुदात्त अर्थात नीचा और 'स्वरित अर्थात मध्य का जिसमें स्वर के उच्चत्व व नीचत्व का समाहार या समन्वय हो जाता है। यह भी कह सकते हैं कि स्वरित मध्य का स्वर है। इन स्वरों को लिखित रूप में दर्शाने के लिए 'उदात्त' हेतु खड़ी रेखा (1) 'अनुदात्त' हेतु पड़ी रेखा (-) तथा 'स्वरित' के लिए किसी चिन्ह का प्रयोग नहीं किया गया है। आगे चल कर वैदिक काल में ही स्वरों को दर्शाने के लिए रेखाओं के स्थान पर 1, 2, 3 अंकों का प्रयोग किया जाने लगा। यह प्रयोग वैदिककालीन भिन्न-भिन्न संहिताओं या ग्रन्थों में किन्हीं विशिष्ट नियमों के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न रूप से दिखाई देता है। **उदात्त** के लिए 1, **स्वरित** के लिए 2, तथा **अनुदात्त** के लिए 3 अंक का प्रयोग किया गया। धीरे-धीरे स्वरों की संख्या तीन से बढ़ कर सात हो गई और तब गान ग्रन्थों में स्वरांकन के लिए 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7 संख्याओं का प्रयोग किया जाने लगा।

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि वैदिक काल में भी अध्ययन-अध्यापन की दृष्टि से स्वरों को लिखित रूप में अंकित करने का प्रयास किया जाता था। इसे ही आने वाले समय में स्वरलिपि पद्धति के लिए किए गए प्रयोगों का प्रारम्भिक स्रोत माना जा सकता है। धीरे-धीरे स्वरलिपि के लिए प्रयुक्त रेखाओं व अंकों के स्थान पर **षड्ज, ऋषभ, गन्धार** आदि शब्दों या फिर **सा रे ग म** आदि अक्षरों का प्रयोग किया जाने लगा उदाहरणस्वरूप **भरत मुनि** ने अपने ग्रन्थ '**नाट्यशास्त्र**' में स्वरों को दर्शाने के लिए षड़ज, ऋषभ आदि संज्ञाओं का प्रयोग किया है जबकि **मतंग** ने अपने ग्रन्थ '**बृहद्देशी**' में **सा रे ग म प ध नी** आदि संकेतों को स्वर के रूप में प्रयुक्त किया है। इन्होंने प्रयोग विधि के अनुरूप स्वर का अंकन दो रूपों में किया है:- (1) ह्रस्व (2) दीर्घ

ह्रस्व - स रि ग म प धनि
दीर्घ - सा रे गा मा पा धा नी

काल की इकाई को 'कला' कहा गया और उसके भी दो रूप लघु व गुरू माने गए। लघु कला को ह्रस्व द्वारा व गुरू कला को दीर्घाक्षर द्वारा अंकित किया गया।

तेरहवीं शताब्दी में शार्ङ्गदेव कृत 'संगीत रत्नाकर' में 'स्वरगताध्याय' में सप्त स्वरों का अंकन मतंग के ही समान है किन्तु मन्द्र व तार सप्तक के स्वरों को दर्शाने के लिए क्रमशः स्वर के ऊपर बिन्दु (गं) व स्वर के ऊपर खड़ी रेखा (ग) का प्रयोग किया गया। जाति प्रस्तारों में स्वरों के नीचे शब्दों के अक्षर भी दिए गए हैं।

पाठगत प्रश्न 5.2

1. **मतंग मुनि** व **भरत मुनि** की स्वरांकन पद्धति में क्या अन्तर था?

2. **पं. शार्ङ्गदेव** ने स्वर सप्तक दर्शाने के लिए किन-किन चिन्हों का प्रयोग किया?

5.3 वर्तमान में प्रचलित पं. वि. ना. भातखंडे स्वरलिपि पद्धति

पं. विष्णु नारायण भातखंडे द्वारा रचित स्वरलिपि पद्धति आधुनिक समय में सर्वाधिक प्रचलित है। सरल और सुविधाजनक होने के कारण अधिकाँशतः प्रकाशित पुस्तकों में तथा शिक्षण संस्थानों में इसी स्वरलिपि पद्धति का प्रयोग किया जा रहा है।

पं. वि. ना. भारतखंडे ने एक स्वरलिपि पद्धति की रचना की और इसका प्रयोग उन्होंने 'हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका' (6 भागों में) के नाम से प्रकाशित पुस्तकों में किया। प्रकाशन की दृष्टि से अत्यधिक सुविधाजनक सिद्ध हुई।

टिप्पणी

इस स्वरलिपि पद्धति के चिन्ह इस प्रकार हैं:-

शुद्ध स्वर – कोई चिन्ह नहीं, केवल सा रे ग...

कोमल स्वर – स्वर के नीचे रेखा (ग॒)

तीव्र स्वर – मध्यम के ऊपर खड़ी रेखा (म॑)

मन्द्र सप्तक – स्वर के नीचे बिन्दु म़ प़ ध़ नी़

मध्य सप्तक – कोई चिन्ह नहीं, केवल सारेग...

तार सप्तक – स्वर के ऊपर बिन्दु सां रें गं मं

जिस स्वर के आगे जितने – ऐसे चिन्ह हों, उसे उतनी ही मात्राओं तक गाना चाहिए।

◡ इस चिन्ह के भीतर अंकित स्वरों को एक ही मात्रा में गाना चाहिए।

मींड दर्शाने के लिए इस चिन्ह का प्रयोग किया जाता है – ⌒ प रे

ताल मात्राओं के लिए निम्नलिखित चिन्हों का प्रयोग किया जाता है

सम – x

खाली – 0

ताली – 2, 3, 4 आदि ताली की गिनती लिखी जाती है

यदि कोई स्वर कोष्ठक में लिखा गया हो जैसे (प) इसका अर्थ है कि पहले उसके आगे का स्वर फिर वह स्वर, उससे पूर्व का स्वर तथा फिर वही स्वर गाना है अर्थात् उदाहरण में ध प म प इस प्रकार चार स्वर एक ही मात्रा में गाने हैं।

पाठगत प्रश्न 5.3

1. स्वरों के ऊपर बिन्दु क्या दर्शाने के लिए लगाया जाता है?
2. मींड के लिए किस चिन्ह का प्रयोग किया जाता है?
3. कोष्टक में लिखे गए स्वर का क्या अर्थ है?

आपने क्या सीखा

ख्याल, ध्रुपद, धमार व ठुमरी आदि गेय विधाओं की बन्दिशों या पदरचनाओं को स्वर

व ताल बद्ध रूप में लिखित स्वरूप प्रदान करके संग्रहित करने के लिए स्वरलिपि की रचना की गई। वैदिक से लेकर आधुनिक काल तक अनेकानेक रेखाओं, बिन्दुओं तथा विभिन्न चिन्हों का प्रयोग करते हुए समय-समय पर भिन्न-भिन्न स्वरलिपि पद्धतियाँ विकसित हुई। कभी खड़ी रेखा या पड़ी रेखा का प्रयोग किया गया तो कभी 1,2,3 अंकों का या फिर स्वरों को ह्रस्व या दीर्घ रूप में लिखा गया। परन्तु आधुनिक काल में पं. विष्णु नारायण भातखण्डे द्वारा रचित स्वरलिपि सर्वाधिक प्रचलित है क्योंकि यह बहुत सरल व स्पष्ट है।

पाठांत प्रश्न

1. स्वरलिपि किसे कहते हैं?
2. स्वरलिपि का उद्देश्य क्या है?
3. भारतीय संगीत के इतिहास में स्वरलिपि की निरन्तरता न होने का क्या कारण है?
4. वैदिक काल में स्वर के प्रारम्भिक स्वरूप क्या थे?
5. वेदों में स्वरों के उच्चत्व व नीचत्व के क्या चिन्ह थे?
6. मतंग ने स्वरों के उच्चत्व व नीचत्व के लिए किन संकेतों का प्रयोग किया है?
7. ग्रन्थों में काल की इकाई को क्या नाम दिया गया है?
8. पं. वि. ना. भातखंडे ने ताल के लिए किन चिन्हों का प्रयोग किया है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

5.1

1. गायन-वादन में प्रयुक्त किए जाने वाले स्वर, सप्तक व ताल को लिखित रूप में दर्शाने के लिए जिन चिन्हों, रेखाओं व अंकों का प्रयोग किया जाता है उसे स्वरलिपि कहते हैं।

2. स्वरलिपि में शुद्ध, कोमल, तीव्र स्वर, मन्द्र व तार सप्तक के स्वर तथा तालों को विभिन्न चिन्हों द्वारा दर्शाया जा सकता है।

5.2

1. भरत मुनि ने स्वरों के लिए षड्ज, ऋषभ आदि संज्ञाओं का प्रयोग किया है जबकि मतंग मुनि ने स रे ग म प ध नि आदि संकेतों को स्वर के रूप में प्रयोग

टिप्पणी

किया है और प्रयोगविधि के अनुरूप स्वर का अंकन ह्रस्व व दीर्घ रूपों में किया है।

ह्रस्व – स रि ग म प ध नि

दीर्घ – सा रे गा मा पा धा नी

2. पं. शांर्ङ्गदेव ने मन्द्र व तार सप्तक को दर्शाने के लिए क्रमशः स्वर के ऊपर बिन्दु (गं) व खड़ी रेखा (ग) का प्रयोग किया है।

5.3

1. स्वरों के ऊपर बिन्दु तार सप्तक के स्वर दर्शाने के लिए लगाया जाता है।
2. मींड के लिए इस चिन्ह का प्रयोग किया जाता है जैसे साध
3. कोष्टक में लिखे गए स्वर का अर्थ है पहले उस स्वर के आगे का स्वर फिर वही स्वर तत्पश्चात उससे पूर्व का स्वर और फिर से वही स्वर, इस प्रकार एक मात्रा में ही चार स्वर गाए जाते हैं उदाहरणार्थ (प) से तात्पर्य है कि 'ध प म प' यह चार स्वर गाए अथवा बजाए जाएँगे।

पारिभाषिक शब्दावली

1. मनोधर्म – कल्पना पर आधारित।
2. लिपि – विशिष्ट चिन्हों से युक्त लिखने का तरीका।
3. ख्याल – विलम्बित तथा द्रुत लयों में एकताल, तीनताल व झपताल आदि में आलाप, बोलतान व तान सहित गाई जाने वाली गेय विधा।
4. ध्रुपद – चारताल अथवा चौताल आदि में उपज तथा लयकारी करते हुए गाई जाने वाली गेय विधा।
5. ठुमरी – दीपचन्दी व कहरवा आदि तालों में बोल बनाव करते हुए गाई जाने वाली गेय विधा।
6. संहिता – ऋचा या मन्त्र संग्रह।
7. प्रबन्ध – तेरहवीं शताब्दी से पूर्व धातु व अंगों से युक्त गेय विद्या।
8. जाति प्रस्तार – जाति गायन में प्रयुक्त स्वर विस्तार।

242hi06

6

सामवेद के संदर्भ में वेदों का संक्षिप्त अध्ययन

वैदिक युग भारतीय संस्कृति के इतिहास का वह प्राचीनतम युग है, जो भारत की प्राचीन संस्कृति के रूप में उपलब्ध है। विद्वानों के अनुसार वैदिक काल प्रायः ईसा पूर्व 5000 वर्ष के लगभग माना गया है। वेद कुल चार हैं– ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। चारों वेदों में से सामवेद को भारतीय संगीत का मूल माना जाता है।

उस काल में संगीत धार्मिक प्रयोजनों में उपासना एवं लौकिक समारोहों में मनोरंजन, दोनों का ही माध्यम था। स्वरों का विकास वैदिक युग में ही आरम्भ हो चुका था। प्रारम्भ में तीन वैदिक स्वरों का प्रयोग होता था– उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित। बाद में इन्हीं से सात वैदिक स्वरों का विकास हुआ, जिनका स्थान अंततः लौकिक अथवा गान्धर्व स्वरों ने ले लिया। वैदिक काल में विभिन्न प्रकार के वाद्यों का भी प्रयोग होता था। तंत्री वाद्यों में विभिन्न प्रकार की वीणा प्रचलित थीं। चर्म वाद्यों में दुन्दुभि, फूंक से बजने वाले वाद्यों मे तुणव तथा धातु निर्मित वाद्यों में आघाटि जैसे वाद्य भी उस समय प्रचलित थे।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के पश्चात आप–

- वैदिक काल में प्रचलित गान–प्रणाली का वर्णन कर सकेंगे;
- यज्ञों में गायन–वादन करने की विधि को प्रस्तुत कर सकेंगे;
- वैदिक संगीत के मूलाधार उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित आदि स्वरों से उद्भूत सामवैदिक सप्त स्वरों के विकास को रेखांकित कर सकेंगे;
- तत्कालीन प्रचलित चतुर्विध **'तत, सुषिर, अवनद्ध** तथा **घन** वाद्यों के संबंध के बारे में वर्णन कर सकेंगे।

टिप्पणी

6.1 वैदिक काल में प्रचलित संगीत की प्रणाली

वैदिक काल में संगीत का प्रयोग धार्मिक प्रयोजनों के लिये तथा लौकिक समारोहों के अवसर पर प्रचुर मात्रा में किया जाता था। यज्ञों के अवसर पर प्रयोग किये जाने वाला संगीत (वैदिक) कठोर नियमों से आबद्ध था जबकि लौकिक समारोहों के अवसर पर आयोजित संगीत (लौकिक) में लोकरंजन का तत्त्व अधिक होता था। वैदिक ऋचाओं को जीवन्त, शक्ति सम्पन्न तथा दिव्यात्मक माना जाने के कारण इनका गान लौकिक व पारलौकिक कामनाओं की पूर्ति के लिये पृथक-पृथक विधि-विधानों से विविध प्रकार के यज्ञों के लिये किया जाता था। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुये वेदगान करने के लिये ऐसे ब्राह्मणों को योग्याधिकारी माना जाता था जो स्वाभाविक मधुर कंठ वाले उत्तम गायक, उत्तम वादक तथा उत्कृष्ट प्रबन्धकार हों, वेदों के ज्ञान में परिपक्व हों तथा वैदिक क्रियाओं में भी कार्यकुशल व निपुण हों। इन सब विशेषताओं के अतिरिक्त उनको मौखिक रूप से वेद ज्ञान की शिक्षा भी ग्रहण करना अनिवार्य था, अतः इसी उद्देश्य से यक्षों व धार्मिक प्रयोजनों के लिये ब्राह्मणों को संगीत की विशेष शिक्षा दी जाती थी। यह शिक्षा पिता से पुत्र को, गुरू से शिष्य को अथवा गुरूकुल में विद्यार्थियों को सामूहिक रूप से दी जाती थी। वैदिक सिद्धान्तों का अध्ययन करने के लिये कुछ आश्रमों एवं सामपरिषदों की भी स्थापना की जाती थी जिनमें संगीत के स्वर-वैशिष्ट्य तथा उच्चारण-वैशिष्ट्य का विशेष रूप से ज्ञान दिया जाता था। यह नियमबद्ध वैदिक संगीत ही वैदिक काल के शास्त्रीय संगीत का रूप माना जा सकता है।

लौकिक संगीत के परिप्रेक्ष्य में वीर पुरूषों की स्तुतिपरक लोकगाथाओं तथा राजाओं का प्रशंसायुक्त गान के रूप में 'गाथा', 'नाराशंसी' तथा 'रैभ्य' आदि नामक गीत प्रकारों का प्रचार था जिनका प्रयोग धार्मिक तथा लौकिक दोनों प्रकार के समारोहों के अवसर पर किया जाता था। 'गाथा' गीत का गान वीणा वाद्य के साथ किए जाने के कारण गायकों को 'गाथागायक', 'वीणागाथिन' अथवा 'वीणागणगिन्' कहा जाता था।

इस काल में नृत्य की प्रस्तुति खुले वातावरण में एकत्रित जनता के सम्मुख होती थी जिसमें नर तथा नारी दोनों ही भाग लेते थे। **'वाजसनेयी संहिता'** ग्रन्थ के अनुसार इस काल में **रज्जु, अरूण, प्रकृति, पुष्प** तथा **बसन्तादि** समूह नृत्य भी प्रचलित थे। इस प्रकार वैदिक काल में धार्मिक प्रयोजनों के लिये वेदों में निर्दिष्ट नियमों के अनुरूप शास्त्रीय संगीत के अतिरिक्त लौकिक समारोहों पर जनरुचि के आधार पर भी संगीत का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है।

पाठगत प्रश्न 6.1

1. वैदिक काल में संगीत का प्रयोग किन अवसरों पर किया जाता था?
2. किस प्रकार के ब्राह्मणों को वेदगान का योग्य अधिकारी माना जाता था?
3. वैदिक काल में संगीत-प्रशिक्षण के लिये किन माध्यमों का प्रयोग किया गया?

टिप्पणी

4. लौकिकसंगीत में प्रयुक्त गीत-प्रकारों का उल्लेख कीजिये।

5. वीणावाद्य के साथ गान करने वाले गायकों को क्या कहते थे?

6. 'वाजसनेयी संहिता' ग्रन्थ में दिये गये समूह नृत्यों के नाम बताइए।

6.2 संगीत का मूल – सामवेद

वैदिक काल में चारों वेदों में संगीत का प्रतिनिधित्व सामवेद करता है इसीलिये सामवेद को भारतीय संगीत का मूल कहा गया है तथा इस वेद को चार वेदों में सर्वश्रेष्ठ माना गया है। जैसा कि गीता में श्रीकृष्ण ने कहा है – 'वेदानां सामवेदोऽस्मि'। साम का गान ऋग्वेद की ऋचाओं के आश्रय से किया गया है अर्थात वैदिक मन्त्र जब स्वर सहित गाये जाते हैं तब उन्हें साम कहा जाता है। छान्दोग्य उपनिषद ग्रन्थ के अनुसार 'साम' की व्युत्पत्ति में कहा गया है- 'सा' + 'अम:' = साम 'सा' का अर्थ है 'ऋचा' तथा 'अम:' का अर्थ है 'आलाप' अर्थात 'आलाप से युक्त ऋचाओं का गान'। वेदमन्त्रों का स्वर तथा लययुक्त गायन करना ही सामगान कहलाता है।

सामवेद के दो भाग हैं – आर्चिक संहिता तथा गान संहिता। आर्चिक संहिता के पुन: दो भाग माने गये हैं- पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक। पूर्वार्चिक भाग में एकल गान के रूप में केवल एक ऋचा के ऊपर सामगान किया जाता था जबकि उत्तरार्चिक भाग में तीन-तीन ऋचात्मक सूक्तों के ऊपर गान किया जाता था। इसमें मुख्य गायक के साथ सहगायक भी होते थे। इस प्रकार पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक में मन्त्र (ऋचा) की प्रधानता रहती थी। परन्तु कालान्तर में जैसे-जैसे यज्ञानुष्ठानों में वृद्धि होने लगी वैसे-वैसे गान की प्रधानता की भावना भी बढ़ने लगी और सामवेद की दूसरी संहिता अर्थात **'गान संहिता'** की रचना हुई जो यद्यपि आर्चिक संहिता पर ही आधारित थी तथापि इसमें गेय तत्त्व की प्रधानता रहती थी। **'गान संहिता'** चार भागों में विभक्त है- **ग्रामगेयगान, अरण्यगेयगान, ऊहगान** तथा **उह्यगान।** ग्रामगेयगान के अन्तर्गत वेद की जटिल भाषा के स्थान पर छन्दोबद्ध सरल संस्कृत भाषा का प्रयोग किया जाता था। अरण्यगेयगान को निर्जन वन प्रदेश में गाया जाता था। ऊहगान तथा ऊह्यगान दोनों रहस्यगान माने गये जिन्हें उपनिषदों के रहस्य को समझने वाले साधक ही गाते थे। इस प्रकार आर्चिक ग्रन्थ साम के साहित्य मात्र का संकेत करते हैं तथा गानग्रन्थ साम के स्वरमय-स्वरूप के द्योतक हैं। यज्ञों में सामगान के लिये पांच अथवा सात भक्तियों का निर्देश दिया गया है, जो इस प्रकार है- **(1) प्रस्ताव (2) उद्गीथ, (3) प्रतिहार, (4) उपद्रव, (5) निधन**। इसके अतिरिक्त कुछ सामों में 'हिंकार' तथा 'प्रणव' नामक भक्तियों का प्रयोग भी किया जाता था। इन भक्तियों का गायन नियमानुसार करने वाले ऋत्विजों को प्रस्तोता, उद्गाता तथा प्रतिहर्ता नाम से सम्बोधित किया जाता था।

पाठगत प्रश्न 6.2

1. 'साम' से क्या तात्पर्य है?
2. पूर्वार्चिक तथा उत्तरार्चिक में क्या अन्तर माना गया है?
3. 'गान संहिता' किन विभागों में विभक्त की गई है?
4. सामगान की पांचभक्तियों के नाम बताइये।
5. भक्तियों के नियमानुसार गायन करने वाले ऋत्विजों के नाम बताइए।
6. साम की व्युत्पति क्या है?

6.3 सामगान में प्रयुक्त स्वर

प्रारम्भ में सामगान करने के लिये केवल तीन स्वरों का प्रयोग किया जाता था जिन के नाम हैं। **उदात्त, अनुदात्त** तथा **स्वरित**। उदात्त अर्थात ऊँचा, अनुदात्त अर्थात् नीचा तथा स्वरित जिसमें स्वर के उच्चत्व व नीचत्व का समन्वय हो जाता है अर्थात मध्य का स्वर। इन्हीं तीन स्वरों का निर्देश करने के लिये मंत्रों के विविध अक्षरों के ऊपर उदात्त के लिये '1' संख्या, स्वरित के लिये '2' संख्या तथा अनुदात्त के लिये '3' संख्या का प्रयोग किया गया। उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित स्वरों का प्रयोग करते हुये सामगान का त्रिविध स्वरूप निर्मित हुआ– आर्चिक गान, गायिक गान तथा सामिक गान। जब एक ही स्वर का प्रयोग किया जाता था तब आर्चिक गान, दो स्वरों का प्रयोग करने पर गाथिक गान तथा तीन स्वरों का प्रयोग करने पर सामिक गान कहलाया। 'तैत्तरीय प्रातिशाख्य' ग्रन्थ के अनुसार शनैः शनैः इन्हीं तीन स्वरों से सामवैदिक सात स्वरों का विकास हुआ जिनके नाम हैं – **क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र** तथा **अतिस्वार्य** जिन की तुलना क्रमशः लौकिक स्वरों के म, ग, रे, स, ध, नि, प, से की जा सकती है। निम्न तालिका से इनका सम्बन्ध स्पष्ट होता है:

वैदिक स्वरों का लौकिक स्वरों

सामवैदिक स्वर		लौकिक स्वर
क्रुष्ट	–	म
प्रथम	–	ग
द्वितीय	–	रे
तृतीय	–	सा

चतुर्थ	–	ध
मन्द्र	–	नि
अतिस्वार्य	–	प

पाठगत प्रश्न 6.3

1. उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित से क्या तात्पर्य है?
2. वैदिक वाङ्मय में एक, दो तथा तीन स्वरों से युक्त गायन के लिये किन संज्ञाओं का प्रयोग किया गया।
3. वैदिक संगीत में प्रयुक्त सप्त स्वरों के नाम लिखिये।

6.4 वैदिक काल के वाद्य

वैदिक काल में चार प्रकार के वाद्यों का उल्लेख मिलता है– (1) तन्त्री वाद्य (2) फूंक से बजने वाले वाद्य (3) चमड़े से मढ़े हुये वाद्य (4) धातु निर्मित वाद्य। इन चार प्रकार के वाद्यों को पश्चात्वर्ती समय में क्रमशः तत वाद्य, सुषिर वाद्य, अवनद्ध वाद्य तथा घन वाद्य के नाम से जाना गया।

वैदिक कालीन तन्त्री वाद्यों में वीणा का प्रमुख स्थान था। वीणा के अनेक प्रकार थे, यथा–बाणवीणा, कर्करि वीणा, काण्ड वीणा, अपघाटलिका, गोधा वीणा आदि। बाण वीणा को 'महावीणा' की संज्ञा भी दी गई है। इस वीणा में सौ तार लगे होते थे। महाव्रत यज्ञ के अवसर पर इस वीणा का वादन लकड़ी की शलाका (डण्डी) द्वारा किया जाता था। फूंक से बजने वाले वाद्यों के अन्तर्गत वंशी वाद्य के लिये बहुधा 'तूणव' संज्ञा प्रयुक्त हुई है। 'नाड़ी' भी इसी वंशी वाद्य का पर्याय था। चमड़े से मढ़े अवनद्ध वाद्यों के अन्तर्गत दुन्दुभि तथा भूमि–दुन्दुभि का विशेष महत्व था। दुन्दुभि वह ढोल प्रकार है जिसे काष्ठ पर चर्म को मढ़कर बनाते थे तथा इसका वादन दण्ड से किया जाता था जिसको 'आहनन' कहते थे। भूमि दुन्दुभि को भूमि में गढ़ा खोदकर उसके ऊपर चर्म मढ़ कर बनाया जाता था। इसका वादन बैल की पूँछ द्वारा ही होता था। 'पणव', 'पिंगा', 'गोधा', 'पटह' तथा 'गर्गर' आदि ये सभी वाद्य इसी श्रेणी के थे। एक वर्ग था जिन्हें गड़क नाम से जाना जाता था। धातु से बने वाद्यों के अंतर्गत 'आघाटि' का उल्लेख मिलता है जिसे कुछ मतानुसार अपघाटालिक अथवा काण्डवीणा भी माना गया है।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 6.4

1. वैदिक काल में कितने प्रकार के वाद्य उपलब्ध थे? नाम बताइये।
2. 'महावीणा' से क्या तात्पर्य है?
3. 'भूमिदुन्दुभि' का वर्णन कीजिये।

आपने क्या सीखा

वैदिक काल में संगीत के लौकिक तथा शास्त्रीय दोनों ही रूपों का उल्लेख प्राप्त होता है। इस काल में संगीत को समाज में आदर की दृष्टि से देखा जाता था। वैदिक कालीन भारतीय संस्कृति में चार वेद माने गये – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। ऋग्वेद के मन्त्रों को जब स्वर सहित गाया जाता था तब उन्हें साम की संज्ञा प्राप्त होती थी। साम के दो भाग 'आर्चिक संहिता' तथा 'गान संहिता' के रूप में जाने गये। साम में प्रयुक्त प्रारम्भिक स्वर 'उदात्त' 'अनुदात्त' तथा 'स्वरित' थे। इन्हीं स्वरों से आगे चलकर सप्त स्वरों का विकास हुआ जिन्हें वैदिक स्वर कहा गया। शनैःशनैः इन सात स्वरों का स्थान लौकिक या गान्धर्व स्वरों ने ले लिया। वैदिक काल में चतुर्विध वाद्यों के रूप में वाद्यों का विकास हो चुका था। इनमें वीणा, दुन्दुभि आदि कुछ ऐसे प्रमुख वाद्य थे जिनका प्रयोग यज्ञों के अवसर पर सामगान के साथ विशेष रूप से किया जाता था। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक काल संगीत कला के विकास की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध एवं उत्कृष्ट था जिसने आगे चलकर भारतीय संगीत की सांस्कृतिक धारा को परिपक्व किया।

पाठांत प्रश्न

1. वैदिक काल में संगीत की प्रणाली का संक्षिप्त वर्णन कीजिये।
2. वैदिक काल में संगीत प्रशिक्षण का क्या स्वरूप था?
3. 'साम' शब्द की व्याख्या करते हुये सामवेद के विभिन्न विभागों का उल्लेख कीजिये।
4. सामगान के प्रारम्भिक तीन स्वरों का विस्तृत वर्णन कीजिये।
5. वैदिक काल में सप्त स्वरों के विकास का वर्णन कीजिये।

6. वैदिक कालीन चतुर्विध वाद्यों का परिचय दीजिये।
7. वैदिक काल में प्रचलित प्रमुख तन्त्री वाद्य एवं चर्म वाद्यों का वर्णन कीजिये।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

6.1

1. धार्मिक प्रयोजनों के लिए तथा लौकिक समारोह के अवसर पर।
2. मधुर कंठ वाले उत्तम गायक, उत्तम वादक व उत्कृष्ट प्रबन्धकार, वेदज्ञान तथा वैदिक क्रियाओं में परिपक्व।
3. पिता से पुत्र को, गुरू से शिष्यों को, गुरूकुल में विद्यार्थियों की सामूहिक रूप से शिक्षा तथा आश्रम, परिषद व सम्मेलन आदि माध्यम।
4. गाथा, नाराशंसी, रैभ्य।
5. वीणा गाथिन, गाथागायक, वीणागणगिन।
6. रज्जु, अरूण, प्रकृति, पुष्प तथा बसन्त नृत्य।

6.2

1. वेद मन्त्रों का स्वर व लययुक्त गान करना।
2. पूर्वार्चिक में केवल एक ऋचा का प्रयोग होता था तथा साम का एकल गान किया जाता था जबकि उत्तरार्चिक में एकाधिक गायकों के द्वारा तीन-तीन ऋचात्मक सूक्तों के ऊपर गान किया जाता था।
3. ग्रामगेयगान, अरण्यगेय गान, ऊहगान तथा ऊह्यगान।
4. प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव, निधन।
5. प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता।
6. सा + अम:

6.3

1. ऊंचा, नीचा तथा मध्य का स्वर।
2. आर्चिक, गाथिक, सामिक।
3. क्रुष्ट, प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मन्द्र, अतिस्वार्य।

टिप्पणी

6.4

1. चार प्रकार के वाद्य उपलब्ध थे–

   (1) तन्त्री वाद्य (2) फूंक से बजने वाले वाद्य (3) चर्म वाद्य (4) धातु निर्मित वाद्य।

2. सौ तारों से युक्त 'बाण' नामक वीणा।

3. भूमि-दुन्दुभि को भूमि में गढ्ढ़ा खोद कर उसके ऊपर चर्म मढ़कर बनाया जाता था।

पारिभाषिक शब्दावली

1.	अथर्ववेद	भारतीय संस्कृति के चार वेद
2.	ऋग्वेद	
3.	यजुर्वेद	
4.	सामवेद	
5.	आर्चिक संहिता	– सामवेद की पहली संहिता
6.	पूर्वार्चिक	– सामवेद की आर्चिक संहिता का पूर्व भाग
7.	उत्तरार्चिक	– सामवेद की आर्चिक संहिता का उत्तर भाग
8.	गान संहिता	– सामवेद की दूसरी संहिता
9.	ग्रामगेय गान	– गान संहिता के चार भाग
10.	अरण्यगेयगान	
11.	उहगान	
12.	उह्यगान	
13.	प्रस्ताव	– सामगान की भक्तियाँ
14.	उद्गीथ	
15.	प्रतिहार	
16.	उपद्रव	
17.	निधन	
18.	हिंकार	
19.	प्रणव	

टिप्पणी

20. प्रस्तोता 21. उद्गाता 22. प्रतिहर्ता	– सामगान की भक्तियों के गायक
23. आर्चिक	– सामगान में एक स्वर का प्रयोग
24. गाथिक	– सामगान में दो स्वरों का प्रयोग
25. सामिक	– सामगान में तीन स्वरों का प्रयोग
26. अनुदात्त 27. उदात्त 28. स्वरित	– तीन वैदिक स्वर
29. तत	– तंत्री युक्त वाद्य
30. सुषिर	– वायु के प्रयोग से बजने वाले वाद्य
31. अवनद्ध	– चर्म द्वारा मढ़ा हुआ वाद्य
32. घन	– धातु वाद्य
33. गाथा 34. नाराशंसी 35. रैभ्य	– वैदिककालीन लौकिक गीत के प्रकार
36. गाथागायक 37. वीणागाथिन 38. वीणागणगिन	– वीणा वाद्य के साथ गाथा का गायन करने वाले गायक
39. रज्जुनृत्य 40. अरुण नृत्य 41. प्रकृति नृत्य 42. पुष्प नृत्य 43. बसन्त नृत्य	– वैदिक काल में प्रचलित समूह नृत्य

टिप्पणी

242hi07

7

संगीत रत्नाकर का संक्षिप्त परिचय

पं. शाङ्र्गदेव द्वारा रचित ग्रन्थ 'संगीत रत्नाकर' भारतीय शास्त्रीय संगीत का एक ऐसा ग्रन्थ है जिसे हिन्दुस्तानी संगीत तथा कर्नाटक संगीत, दोनों पद्धतियों में आधार ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया गया है। इस ग्रन्थ के माध्यम से न केवल भारतीय शास्त्रीय संगीत की प्राचीन विधाओं, स्वरों, रागों, गीति, जातिगायन, ताल, वाद्य व नृत्य आदि से सम्बन्धित जानकारी आधुनिक संगीत विद्वानों को उपलब्ध हो सकी है। संगीत रत्नाकर में पं. शाङ्र्गदेव के पूर्व ग्रन्थकारों में भरत, मतंग, दत्तिल आदि ग्रन्थकारों के मतों के उल्लेख होने से यह ग्रन्थ भारतीय संगीत का एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ सिद्ध होता है।

तेरहवीं शताब्दी में लिखे गये ग्रन्थ संगीत रत्नाकर को 'सप्ताध्यायी' भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें सात अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में संगीत के विविध पहलू विस्तारपूर्वक बताये गये हैं। उदाहरण स्वरूप, 'रागविवेकाध्याय' नामक द्वितीय अध्याय में वे रागों के दशविध वर्गीकरण का विवरण देते हैं तथा कुल 264 रागों का विवरण 'पूर्व प्रसिद्ध' व 'अधुना प्रसिद्ध' कहकर रचनाओं एवं विस्तार के साथ दिया है।

पं. शाङ्र्गदेव ने संगीत के सिद्धांतों को पुनः स्थापित किया एवं उन्हें व्यापक रूप से सामने रखा। आज भी मूल शब्दावली की परिभाषाओं को इस ग्रन्थ में से उद्धृत किया जाता है।

उद्देश्य

इस पाठ को पढ़ने के पश्चात आप–

- संगीत रत्नाकर के मुख्य बिन्दुओं को प्रस्तुत कर सकेंगे;
- संगीत रत्नाकर के मुख्य बिंदुओं का वर्णन कर सकेंगे;
- सात अध्यायों के नामों का उल्लेख कर सकेंगे;

7.1 अध्यायों का परिचय

पं. शार्ङ्गदेव ने संगीत रत्नाकर की रचना तेरहवीं शताब्दी में की। इस संस्कृत ग्रन्थ में सात अध्याय है। अतः इसे कदाचित् 'सप्ताध्यायी' नाम से भी जाना जाता है। सात अध्याय इस प्रकार हैं:

1. स्वरगताध्याय
2. रागविवेकाध्याय
3. प्रकीर्णकाध्याय
4. प्रबन्धाध्याय
5. तालाध्याय
6. वाद्याध्याय
7. नर्तनाध्याय

पाठगत प्रश्न 7.1

1. संगीत रत्नाकर किस शताब्दी में लिखा गया?
2. संगीत रत्नाकर के रचयिता कौन हैं?
3. संगीत रत्नाकर के अध्यायों के नाम क्या हैं?
4. 'सप्ताध्यायी' किसे कहते हैं?

7.2 स्वरगताध्याय का विवरण

स्वरगताध्याय नामक प्रथम अध्याय में आठ प्रकरण हैं। प्रथम प्रकरण में ईश्वर की वन्दना के उपरान्त लेखक ने अपने पिता का नाम 'सोढल' बताया है जो कश्मीर के यशस्वी ब्राह्मण वंश से सम्बन्ध रखते थे। इस ग्रन्थ में उन्होंने भरत, मतंग तथा दत्तिल के अतिरिक्त याष्टिक, दुर्गाशक्ति, शार्दूल, कोहल, नारद व नान्यदेव आदि जैसे महान पूर्व ग्रन्थकारों के विचारों को सारगर्भित रूप में प्रस्तुत किया है। गीत, वाद्य व नृत्य के सम्यक् स्वरूप को 'संगीत' की संज्ञा देने के साथ ही उन्होंने संगीत के दो प्रकार मार्ग व देशी बताए हैं। उनके अनुसार, जिस संगीत की खोज ब्रह्मा आदि देवों ने की और जिसका प्रयोग भरत आदि मुनियों ने किया उसे 'मार्ग' कहते हैं और विभिन्न देशों में जनरूचि के अनुसार प्रयुक्त होने वाले संगीत को 'देशी संगीत' कहते हैं, ऐसा माना है। इन्होंने नृत्य को वाद्य का और वाद्य को गीत का अनुगामी मानते हुए गीत, वाद्य व नृत्य में से गीत अर्थात् गायन को प्रधान माना है। वे सात अध्यायों एवं उनकी विषय वस्तु का संक्षिप्त परिचय देते हैं।

प्रथम अध्याय के द्वितीय व तृतीय प्रकरण में शरीर संरचना, नाद की सर्वव्यापकता, नाद, श्रुति, स्वरों के प्रकार, उनके वर्ण, देवता, ऋषि, छंद व रस आदि का विवेचन किया गया है। नादोत्पत्ति की चर्चा में उन्होंने शरीर में प्राणवायु के उत्थान व मुख से ध्वनित होने की प्रक्रिया का उल्लेख करते हुए 22 श्रुतियाँ मानी हैं। इन 22 श्रुतियों से उन्होंने

टिप्पणी

12 विकृत व 7 शुद्ध स्वरों की उत्पत्ति मान कर स्वरों की कुल संख्या 19 मानी है और स्वरों का सम्बन्ध विभिन्न रसों, छन्दों व रंगों से बताया है। चतुर्थ व पंचम प्रकरणों में ग्राम, मूर्च्छना व तान आदि की व्याख्या करते हुए लेखक ने दो ग्राम-षड्जग्राम व मध्यमग्राम तथा उनसे उत्पन्न मूर्च्छनाओं व तानों का विस्तृत वर्णन किया है। तत्पश्चात् स्वरसाधारण के अन्तर्गत जातियों में इन स्वरों के प्रयोग की चर्चा की है। छठे, सातवें व आठवें प्रकरणों में वर्ण, अलंकार, जातिलक्षण व गीति आदि को परिभाषित किया है।

पाठगत प्रश्न 7.2

1. प्रथम अध्याय में कितने प्रकरण हैं?
2. पं. शार्ङ्गदेव के पिता एवं वंश का परिचय दीजिए।
3. मार्ग व देशी संगीत की परिभाषा क्या है?
4. पं. शार्ङ्गदेव ने कितनी श्रुतियां व स्वर माने हैं?
5. प्रथम अध्याय के द्वितीय व तृतीय प्रकरण में किन सांगीतिक विषयों पर चर्चा की गई है?

7.3 रागविवेकाध्याय का विवरण

'रागविवेकाध्याय' नामक द्वितीय अध्याय के अंतर्गत 'मार्ग' राग-ग्राम राग, उपराग, राग, भाषा, विभाषा, अंतर्भाषा तथा 'देशी' राग-भाषांग, उपांग, क्रियांग और रागांग के रूप में रागों का दशविध वर्गीकरण दिया गया है। संगीत रत्नाकर में प्रत्येक वर्ग के आधार पर रागों की कुल संख्या 264 है।

इस अध्याय में दो प्रकरण हैं। प्रथम प्रकरण के अंतर्गत पाँच गीतियों - शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसरा व साधारणी के आधार पर पाँच प्रकार के ग्राम राग बताये हैं। तत्पश्चात् उपराग, राग, भाषा, विभाषा एवं अंतर्भाषा का उल्लेख है। द्वितीय प्रकरण में रागालाप एवं आक्षिप्तिका के साथ-साथ पूर्वप्रसिद्ध व अधुनाप्रसिद्ध (उस काल में प्रचलित) देशी रागों का वर्णन है।

पाठगत प्रश्न 7.3

1. द्वितीय अध्याय में कितने प्रकरण है?
2. पांच गीतियों के नाम क्या हैं?
3. लेखक ने कुल कितने रागों की चर्चा की है?
4. संगीत रत्नाकर के अनुसार रागों का दशविध वर्गीकरण किस रूप में दिया गया हैं?

7.4 प्रकीर्णकाध्याय का विवरण

तृतीय अध्याय 'प्रकीर्णकाध्याय' है, जिसमें 'प्रकीर्ण' अर्थात् विविध विषय निहित हैं। इसका आरम्भ निपुण रचयिता 'वाग्गेयकार' के वर्णन से होता है। वह जो रचना के साहित्यिक पक्ष के साथ-साथ सांगीतिक रूप का भी रचयिता को, 'वाग्गेयकार' कहलाता है। वाग्गेयकार लक्षणों के अंतर्गत व्याकरण का ज्ञान, सामान्य भाषा ज्ञान, रस, भाग, कला, लय, ताल, देशी राग, प्रंबन्ध इत्यादि का ज्ञान सम्मिलित हैं। रचयिता के स्तर के अनुसार उत्तम, मध्यम एवं अधम श्रेणियां भी दी गई हैं। तत्पश्चात् गंधर्व एवं स्वरादि का वर्णन है। वह जिसे मार्ग एवं देशी संगीत का ज्ञान हो, 'गंधर्व' है तथा वह जिसे केवल मार्ग का ज्ञान हो, 'स्वरादि' है।

विभिन्न श्रेणियों के आधार पर गायक के लक्षण दिए गए हैं। उदाहरण के रूप में, उत्तम गायक की आवाज का गुण धर्म अच्छा होना चाहिए, उसे रागों, रागांगों भाषाओं, क्रियांगो और उपांगो से भली प्रकार परिचित होना चाहिए, प्रबंधों, आलप्ति का ज्ञान होना चाहिए, सभी स्थानों में गमक का अभ्यास, ताल, लय इत्यादि का ज्ञान होना चाहिए। इसी प्रकार मध्यम, अधम, पंचविध गायक, त्रिविध गायक तथा गायन्ति (गायिका) का भी वर्णन है।

इस अध्याय में पं. शाङ्र्गदेव के द्वारा पंद्रह प्रकार के गमक तथा छियानवे स्थाय बताए गए हैं। आवाज़ का इस प्रकार हिलाना जिससे चित्त प्रसन्न हो, 'गमक' कहलाता है तथा 'स्थाय' राग के अवयव हैं। राग को अनावृत्त करने की प्रक्रिया 'आलप्ति' कहलाती है। वे आलप्ति के दो प्रकार बताते हैं–

(1) रागालप्ति तथा (2) रूपक आलप्ति

अन्त में, वे वृन्द गान एवं वादन का उल्लेख करते हैं।

पाठगत प्रश्न 7.4

1. 'वाग्गेयकार' किसे कहते हैं?
2. उत्तम गायक के क्या लक्षण हैं?
3. संगीत रत्नाकार में कितने प्रकार के गमक बताए गए हैं?

7.5 प्रबन्धाध्या का विवरण

चतुर्थ अध्याय अर्थात् प्रबन्धाध्याय में 'प्रबन्ध' गेय विधा का वर्णन किया गया है। प्रबन्ध प्राचीन काल की एक प्रचलित गेय विधा थी जिसमें चार धातु - उद्ग्राह,

मेलापक, ध्रुव, आभोग एवं छः अंग-स्वर, बिरुद, तेनक, पद, पाट तथा ताल का समावेश था। प्रबन्ध के तीन प्रकार - सूड, आलि अथवा आलिक्रम एवं विप्रकीर्ण बताये गए हैं।

पं. शाङ्र्गदेव गीत की परिभाषा एवं उसके दो प्रकार - गंधर्व एवं गान से आरम्भ करते हैं। गान के दो प्रकार हैं- निबद्ध तथा अनिबद्ध। वह जो धातुओं और अंगों से बद्ध हो, 'निबद्ध' है तथा वह जो इस प्रकार के बन्धन से मुक्त हो, 'अनिबद्ध' है। निबद्ध के लिए वे तीन संज्ञाएं बताते हैं- प्रबन्ध, वस्तु तथा रूपक।

पाठगत प्रश्न 7.5

1. 'प्रबन्ध' किसे कहते हैं?
2. 'प्रबन्ध' के धातु और अंग वर्णित करें।
3. 'प्रबन्ध' के तीन प्रकारों के नाम बताइए।

7.6 तालाध्याय का विवरण

पाँचवा अध्याय अर्थात् तालाध्याय 'ताल' की अवधारणा पर केन्द्रित है। पं. शाङ्र्गदेव के अनुसार, ताल वह आधार है जिस पर गायन, वादन तथा नृत्य प्रस्थापित हैं। इस अध्याय के दो भाग हैं। प्रथम भाग के अंतर्गत मार्ग ताल तथा द्वितीय भाग के अंतर्गत देशी ताल बताये गए हैं। मार्ग तालों के पाँच प्रकार तथा देशी तालों के एक सौ बीस प्रकार दिए गए हैं।

ताल के विभिन्न अवयव, जैसे क्रिया (निःशब्द एवं सशब्द), लय, यति, कला इत्यादि का वर्णन उनके सांगीतिक काल अथवा गति के क्रियात्मक प्रस्तुतिकरण के आधार पर किया गया है।

पाठगत प्रश्न 7.6

1. पं. शाङ्र्गदेव के अनुसार ताल की परिभाषा क्या है?
2. तालाध्याय में कितने भाग हैं?
3. तालाध्याय में मार्ग तालों के कितने प्रकार दिए गए हैं?
4. तालाध्याय में देशी तालों के कितने प्रकार दिए गए हैं?

टिप्पणी

7.7 वाद्याध्याय का विवरण

'वाद्याध्याय' नामक छठे अध्याय के अंतर्गत चार प्रकार के वाद्य दिए गए हैं, यथा– (1) तत, (2) अवनद्ध (3) धन (4) सुषिर।

तत वाद्यों के अंतर्गत एक तंत्री, त्रितंत्री, चित्र वीणा, विपंची वीणा, किन्नरी वीणा, पिनाकी वीणा इत्यादि जैसे तंत्री वाद्य सम्मिलित हैं। चमड़े से आच्छादित ताल वाद्य अवनद्ध कहलाते हैं। उदाहरण के रूप में पटह, घट, डक्क, डमरू, मेरी तथा दुंदुभि। धातु से निर्मित ताल वाद्य धन वाद्य कहलाते हैं। इस श्रेणी के अंतर्गत जय घंटा, घंटा, क्षुद्र घंटिका इत्यादि जैसे वाद्य सम्मिलित हैं। वस्तुत: छिद्र युक्त वायु की सहायता से बजने वाले वाद्य सुषिर वाद्य कहलाते हैं, जैसे वंशी, पाविका, मुरली, श्रृंग, शंख इत्यादि।

इस अध्याय में इन वाद्यों का वादन शैली सहित वर्णन है।

पाठगत प्रश्न 7.7

1. संगीत रत्नाकर में कितने प्रकार के वाद्य दिए गए हैं? उनके नाम बताइए।
2. तत वाद्यों के दो उदाहरण दीजिए।
3. अवनद्ध और धन वाद्य क्या होते हैं?
4. सुषिर वाद्यों के दो उदाहरण दीजिए।

7.8 नर्तनाध्याय का विवरण

'नर्तनाध्याय' नामक सातवां अध्याय नर्तन से संबंधित अवयवों, उप अवयवों तथा शारीरिक भंगिमाओं का वर्णन है। इसके दो भाग हैं। प्रथम भाग में पं. शाङ्र्गदेव ने नर्तन के संदर्भ में तीन संज्ञायें दी हैं– नाट्य, नृत्य तथा नृत्त। नाट्य एवं नृत्य का प्रयोग पर्व के समय तथा नृत्त का प्रयोग राजाओं के अभिषेक के समय, विवाह, पुत्र जन्म इत्यादि उत्सवों के समय बताया गया है। नाट्य वाचिक अभिनय, नृत्य आंगिक अभिनय तथा नृत्त लय-ताल के अनुसार आंगिक क्रिया एवं पाद संचालन के द्वारा भावाभिव्यक्ति पर आधारित है। संगीत के संदर्भ में 'नृत्य' का प्रयोग है। नृत्य एवं नृत्त के दो प्रकार वर्णित हैं, यथा-ताण्डव एवं लास्य। ताण्डव उद्धत प्रकार एवं लास्य सुकुमार प्रकार माना जाता है, जिन्हें क्रमश: शिव एवं पार्वती ने उत्पन्न किया है। द्वितीय भाग के अंतर्गत नव रस-श्रृंगार, हास्य, अखुत, रौद्र, वीर, करुण, भयानक, बीभत्स तथा शांत का वर्णन दर्शकों के संदर्भ में किया गया है।

पाठगत प्रश्न 7.8

1. नर्तन के संदर्भ में संगीत रत्नाकर में दी गई तीन संज्ञाओं का नाम बताइये।
2. ताण्डव और लास्य क्या हैं?
3. नव रसों के नाम बताइये।

आपने क्या सीखा

पं. शार्ङ्गदेव रचित 'संगीत रत्नाकर' संस्कृत भाषा में संगीत का एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। इसे संगीत की दोनों पद्धतियों, हिन्दुस्तानी एवं कर्नाटक संगीत की पारिभाषिक शब्दावली का मूल माना जाता है। भारतीय संगीत के इस ग्रंथ के माध्यम से प्राचीन समय में प्रचलित शास्त्रीय संगीत की विभिन्न विधाओं, रागों, गीतियों, जाति गान, ताल प्रस्तुतिकरण, वाद्य तथा नर्तन के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। संगीत रत्नाकर में पं. शार्ङ्गदेव ने विभिन्न अवधारणाओं को व्यवस्थित प्रकार से परिभाषित किया है तथा अपने से पूर्व संगीत विद्वानों के विचार भी प्रस्तुत किये हैं। उन्होंने अपने समय के एवं अपने से पूर्व समय के रागों तथा तालों का वर्णन किया है। इस ग्रंथ को 'सप्ताध्यायी' भी कहा जाता है, क्योंकि यह सात अध्यायों में विभाजित हैं।

पाठांत प्रश्न

1. संगीत रत्नाकर महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ क्यों माना गया है?
2. संगीत रत्नाकर को अन्य किस नाम से पुकारा जाता है और क्यों?
3. पं. शाङ्र्गदेव ने किन पूर्व ग्रंथकारों के मतों को अपने विवेचन का आधार बनाया?
4. मार्ग व देशी तथा पूर्व प्रसिद्ध व अधुना प्रसिद्ध शब्दों का संगीत रत्नाकर में क्या तात्पर्य है?
5. संगीत रत्नाकर में प्रमुख रूप से किन सांगीतिक पारिभाषिक शब्दों (Terms) को संगीत विवेचन का आधार बनाया गया है?

टिप्पणी

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

7.1

1. तेरहवीं शताब्दी
2. पं. शार्ङ्गदेव
3. स्वरगताध्याय, रागविवेकाध्याय, प्रकीर्णकाध्याय, प्रबन्धाध्याय, तालाध्याय, वाद्याध्याय, नर्तनाध्याय
4. संगीत रत्नाकर

7.2

1. आठ
2. पिता का नाम सोढल, कश्मीर देश के ब्राह्मण वंश से सम्बन्धित
3. जिस संगीत की खोज ब्रह्मा आदि देवों ने की और जिसका प्रयोग भरत आदि मुनियों ने किया उसे मार्ग संगीत कहते हैं। विभिन्न देशों में जनरूचि के अनुसार प्रयुक्त होने वाले संगीत को देशी संगीत कहा गया है।
4. पं. शार्ङ्गदेव ने 22 श्रुतियां व शुद्ध तथा विकृत मिलाकर कुल 19 स्वर माने हैं।
5. शरीर संरचना, नाद की सर्वव्यापकता, नाद, श्रुति स्वरों के प्रकार, उनके वर्ण इत्यादि।

7.3

1. द्वितीय अध्याय में दो प्रकरण हैं
2. शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसरा, साधारणी
3. 264 रागों की चर्चा की है
4. 'मार्ग' राग – ग्राम राग, उप राग, राग, भाषा, विभाषा, अंतर्भाषा तथा 'देशी' राग – भाषांग, उपांग, क्रियांग और रागांग के रूप में रागों का दशविध वर्गीकरण दिया गया है।

7.4

1. वह जो रचना के साहित्यिक पक्ष के साथ-साथ सांगीतिक रूप का भी रचयिता हो, 'वाग्गेयकार' कहलाता है।

टिप्पणी

2. उत्तम गायक की आवाज़ का गुण धर्म अच्छा होना चाहिए, उसे रागों, रागांगों, भाषांगो, क्रियांगों और उपांगों से भली प्रकार परिचित होना चाहिए, प्रबंधों आलप्ति का ज्ञान होना चाहिए, सभी स्थानों में गमक का अभ्यास, ताल लय इत्यादि का ज्ञान होना चाहिए।
3. पंद्रह

7.5

1. प्राचीन काल की एक प्रचलित गेय विधा
2. धातु – उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव, आभोग

   अंग – स्वर, बिरुद, तेनक, पद, पाट, ताल
3. सूड़, आलि अथवा विप्रकीर्ण

7.6

1. ताल वह आधार है जिस पर गायन, वादन और नृत्य स्थापित हैं
2. दो भाग
3. पांच
4. एक सौ बीस

7.7

1. संगीत रत्नाकर में वाद्यों के चार प्रकार दिए गए हैं – तत, अवनद्ध, धन, सुषिर
2. एक तंत्री, त्रि तंत्री
3. अवनद्ध – चर्म आच्छादित ताल वाद्य

   धन – धातु निर्मित ताल वाद्य
4. वंशी, पाविका

7.8

1. नाट्य, नृत्य तथा नृत्त
2. संगीत रत्नाकर में नृत्य एवं नृत्त के दो प्रकार वर्णित हैं, यथा – ताण्डव एवं लास्य। ताण्डव उद्धत प्रकार एवं लास्य सुकुमार प्रकार माना जाता है, जिन्हें क्रमशः शिव एवं पार्वती ने उत्पन्न किया है।
3. श्रृंगार, हास्य, अद्भुत, रौद्र, वीर, करुण, भयानक, विभत्स तथा शांत।

टिप्पणी

पारिभाषिक शब्दावली

1. हिन्दुस्तानी संगीत – उत्तर भारत में प्रचलित भारतीय शास्त्रीय संगीत
2. कर्नाटक संगीत – दक्षिण भारत में प्रचलित भारतीय शास्त्रीय संगीत
3. जाति गायन – प्राचीन काल में प्रचलित एक गेय विधा
4. श्रुति – 'श्रूयते इति श्रुति' ध्वनि को जिस लघुतम रूप में सुना जा सके और पहचाना जा सके
5. ग्राम – 'मेलः स्वरसमूहः स्यात्' स्वरों के समूह को श्रुतियों की विशिष्ट व्यवस्था से युक्त होने पर ग्राम कहा जाता है जैसे षड्ज ग्राम में 22 श्रुतियों पर 7 स्वरों की स्थापना इस प्रकार है सा–4, रे–3, ग–2, म–4, प–4, ध–3, नि–2
6. मूर्च्छना – विशिष्ट ग्राम में स्वरों का क्रमानुसार आरोहात्मक एवं अवरोहात्मक (सामान्यतया अवरोहात्मक) प्रयोग।
7. तान – 'तननात्ताना:' स्वरों को तानना या स्वरों के माध्यम से राग का विस्तार करना (आधुनिक समय में तान का अर्थ राग के अन्त में अथवा कदाचित बीच में भी स्वरों का तीव्रता से प्रयोग किया जाना माना जाता है।
8. रागालाप – राग का प्रारम्भिक परिचयात्मक आलाप
9. आक्षिप्तिका – प्राचीन काल में स्वर एवं पद संरचना के लिए प्रयुक्त संज्ञा
10. पूर्वप्रसिद्ध – ग्रन्थ रचना से पूर्व के समय में प्रचलित राग व ताल आदि
11. अधुनाप्रसिद्ध – ग्रन्थ रचना के समय में प्रचलित राग व ताल आदि
12. मार्ग संगीत – वह जिसे ब्रह्म द्वारा खोजा गया और भरत आदि द्वारा प्रयोग किया गया।
13. देशी संगीत – वह जिसका प्रयोग विभिन्न देशों में जन रुचि के अनुसार हो।
14. ग्राम राग
15. उप राग
16. राग
17. भाषा
18. विभाषा
19. अंतर्भाषा

(14–19) – मार्ग राग प्रकार

टिप्पणी

20. भाषांग
21. उपांग — देशी राग प्रकार
22. क्रियांग
23. रागांग
24. शुद्धा
25. भिन्ना
26. गौड़ी — गीति प्रकार
27. वेसरा
28. साधारणी
29. वाग्गेयकार – वह जो रचना के साहित्यिक पक्ष के साथ-साथ सांगीतिक रूप का भी रचयिता हो।
30. गंधर्व – वह जिसे मार्ग एवं देशी संगीत का ज्ञान हो।
31. स्वरादि – वह जिसे केवल मार्ग संगीत का ज्ञान हो।
32. प्रबन्ध – प्राचीन काल में प्रचलित गेय विधा
33. उद्ग्राह
34. मेलापक
35. ध्रुव — प्रबन्ध के धातु
36. आभोग
37. स्वर
38. बिरुद
39. तेनक
40. पद — प्रबन्ध के अंग
41. पाट
42. ताल

टिप्पणी

43. सूड
44. आलि अथवा आलिक्रम
45. विप्रकीर्ण

– प्रबन्ध प्रकार

46. तत
47. अवनद्ध
48. धन
49. सुषिर

– वाद्य प्रकार

50. नाट्य
51. नृत्य
52. नृत्त

– नर्तन की संज्ञाएं

242hi08

8

संगीत पारिजात में निहित विषय-सामग्री का संक्षिप्त अध्ययन

सत्रहवीं शताब्दी ई. में पं. अहोबल के द्वारा संस्कृत में लिखा गया सांगीतिक ग्रन्थ 'संगीत पारिजात' अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। पं. अहोबल के द्वारा किया गया स्वरों का विश्लेषण विशेष रूप से उल्लेखनीय है, क्योंकि आधुनिक स्वरों की स्थापना में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। यद्यपि इन्होंने शास्त्रानुसार सात शुद्ध तथा बाईस विकृत स्वर बताये हैं, फिर भी क्रियात्मक प्रयोग की दृष्टि से वीणा के तार पर सात शुद्ध एवं पाँच विकृत स्वरों को स्थापित किया है। ऐसा करने से न केवल स्वरों की आन्दोलन संख्या की गणना के मापदंड स्थापित हुए, अपितु भिन्न नाम से युक्त वस्तुत: समान स्वर हट गये परन्तु इनका शुद्ध स्वर सप्तक आधुनिक काफी के समान था। इस अद्‌भुत ग्रन्थ की महत्ता इस तथ्य से उजागर होती है कि वर्ष 1724 ई. में इसका फ़ारसी मे अनुवाद किया गया, जिसकी प्रति रामपुर रज़ा पुस्तकालय, रामपुर में उपलब्ध है।

संगीत पारिजात एक बृहत् ग्रन्थ है, जिसमें 708 श्लोक हैं। इसमें दो भाग हैं। पहला भाग राग गीत विचार काण्ड है तथा द्वितीय भाग वाद्य ताल काण्ड है।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात् आप–

- संगीत पारिजात के दो भागों का नाम उल्लेख कर सकेंगे;
- संगीत पारिजात में दी गई सांगीतिक अवधारणाओं का वर्णन कर सकेंगे;
- पं. अहोबल के योगदान का विवरण दे सकेंगे; और
- पं. अहोबल के योगदानों का आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत पर प्रभाव का वर्णन कर सकेंगे।

टिप्पणी

8.1 संगीत पारिजात की विषय सामग्री

संगीत पारिजात के 708 श्लोक दो भागों में संग्रहीत हैं। प्रथम भाग **'राग गीत विचार कांड'** तथा द्वितीय भाग **'वाद्य ताल कांड'** कहलाता है। **'राग गीत विचार कांड'** के अंतर्गत स्वर प्रकरण (श्रुति एवं स्वर का विवरण), ग्राम लक्षण (ग्राम का विवरण), मूर्च्छना का विवरण, मूर्च्छना एवं स्वर प्रस्तार, वर्ण लक्षण (वर्णों का विवरण), जाति निरुपण (जाति तथा राग का विवरण), राग प्रकरण (रागों का विवरण), तत्पश्चात् प्रबन्ध का विवरण, वाग्गेयकार के लक्षण, गायन में गुण तथा दोष सम्मिलित हैं। **वाद्य ताल कांड** के अंतर्गत वाद्यों का वर्गीकरण, उनका वर्णन, वादन का तरीका, वादकों के लक्षण एवं ताल के प्राचीन तत्त्वों का समावेश है।

8.2 राग गीत विचार कांड

8.2.1 श्रुति एवं स्वर का विवरण

स्वर प्रकरण का आरम्भ वे मंगलाचरण से करते हैं। आगे वे कहते हैं कि संगीत का प्रभाव यज्ञ अथवा दान से बढ़कर होता है। संगीत को उन्होंने पं. शार्ङ्गदेव के समान ही परिभाषित किया है, जिसमें गीत, वाद्य एवं नृत्य को सम्मिलित रूप से संगीत कहा गया है। इनमें गायन को प्रमुख बताया है।

उन्होंने संगीत के दो प्रकार, **मार्गी** एवं **देशी** दिये हैं। तत्पश्चात् नाद के उद्गम के विषय में उन्होंने उल्लेख किया है कि वह अग्नि तथा वायु के संयोग से हृदय में स्थित तंत्रिका केंद्र (चक्र) से उत्पन्न होता है। मंद्र, मध्य व तार का उद्गम गले के 'विशुद्ध चक्र' एवं मस्तिष्क के 'सहस्र चक्र' द्वारा होता है।

श्रुति एवं **स्वर** में अंतर बताते हुए वे कहते हैं कि श्रुति का हेतु सुनने में है, परन्तु वह स्वर से पृथक नहीं है। **स्वर** एवं **श्रुति** का अंतर सर्प व उसकी कुंडली के समान है। जहाँ सर्प स्वर है तथा श्रुति कुंडली। आगे वे स्पष्ट करते हैं कि श्रुतियाँ रागों में स्वर बन जाती हैं तथा उनका हेतु राग बन जाता है, अतः **'श्रुति'** नाम उचित है।

तत्पश्चात् वे बाईस श्रुतियों का वर्णन करते हैं। फिर वे स्वरों पर आते हैं। उन्होंने सात शुद्ध तथा बाईस विकृत, कुल उनत्तीस स्वरों का उल्लेख किया है। 'सा', 'म' तथा 'प' प्रत्येक की चार श्रुतियाँ, 'ग' तथा 'नि' की दो एवं 'रे' तथा 'ध' की तीन श्रुतियाँ बताई हैं।

विकृत स्वरों के लिये उन्होंने विविध संज्ञाओं का प्रयोग किया है, जैसे **तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम, कोमल, पूर्व, साधारण, काकली** तथा **कैशिक**। आगे वे पूर्व विद्वानों की ही भांति चतुर्विध स्वर वादी, संवादी, अनुवादी एवं विवादी तथा स्वरों के देवता, कुल, जाति, वर्ण, रस एवं ऋषि का भी उल्लेख करते हैं।

8.2.2 ग्राम का विवरण

ग्राम लक्षण के अंतर्गत अहोबल 'ग्राम' की चर्चा करते हैं। इसे वे स्वरों के समूह की

टिप्पणी

भांति परिभाषित करते हैं तथा तीन ग्रामों का उल्लेख करते हैं जिनके नाम हैं – षड्ज, मध्यम एवं गंधार। रागों में प्रयोग के लिये केवल दो, यथा – षड्ज एवं मध्यम को पर्याप्त माना है। रागों की उत्पत्ति **षड्ज ग्राम** से मानी है।

8.2.3 मूर्च्छना का विवरण

ग्राम लक्षण के पश्चात् वे **'मूर्च्छना'** की चर्चा करते हैं। इसे वे ग्राम के अंतर्गत स्वरों का आरोह एवं अवरोह के रूप में परिभाषित करते हैं। **षड्ज ग्राम** की सात प्रकार की मूर्च्छनायें दी गई हैं। तत्पश्चात् भरत्, शांर्ङ्गदेव, मतंग एवं नारद जैसे पूर्व विद्वानों की भांति मध्यम और गंधार ग्रामों में प्रत्येक की सात मूर्च्छनायें दी हैं। इनके संयोजन भी बताये हैं। आगे वे मूर्च्छनाओं के आधार पर निर्मित तानों का उल्लेख करते हैं।

8.2.4 मूर्च्छना एवं स्वर प्रस्तार

इस अध्याय में वे खंड-मेरू पद्धति के द्वारा स्वरों के संयोजन का वर्णन करते हैं।

8.2.5 वर्ण लक्षण

इस अध्याय में वे चतुर्विध वर्णों की गणना करते हैं, जिनके नाम हैं– **स्थायी, आरोही, अवरोही** तथा **संचारी।** अलंकारों में वे स्थायी वर्ण के आधार पर सात, आरोही के आधार पर बारह, अवरोही के आधार पर बाहर तथा संचारी वर्ण के आधार पर अड़तीस का उल्लेख करते हैं।

8.2.6 जाति निरूपण

जातियों से संबद्ध इस अध्याय में वे सात शुद्ध जातियों का वर्णन करते हैं, यथा – **षाड्जी, आर्षभी, गांधारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती** तथा **नैषादी।** तत्पश्चात् वे विभिन्न गमकों का उल्लेख करते हैं। फिर वे वीणा पर स्वरों की स्थापना करते हैं। आगे वे पाँच गीतियों का उल्लेख करते हैं, यथा– **शुद्धा, भिन्ना, गौडी, वेसरा** तथा **साधारणी।** वे इनके लक्षणों का वर्णन करते हैं। फिर वे रागों पर आते हैं। उन्होंने 122 रागों का उल्लेख किया है। राग को वे स्वरों का एक रंजक संदर्भ बताते हैं। रागों के गायन समय का भी वे उल्लेख करते हैं।

8.2.7 राग प्रकरण

राग प्रकरण में वे रागों का विवरण देते हैं। अंत में वे उन दस स्वरों का उल्लेख करते हैं, जिनका प्रयोग दिये गये रागों में नहीं हुआ है, जिससे प्रयुक्त स्वरों की संख्या उन्नीस रह जाती है। वस्तुत: उन्होंने केवल सात शुद्ध एवं पाँच विकृत स्वरों का ही उपयोग किया हैं, क्योंकि शेष स्वरों में से अधिकतर का केवल नाम अलग है, स्थान वही है।

8.2.8 प्रबन्ध का विवरण

राग प्रकरण के पश्चात् वे प्रबन्ध की चर्चा करते हैं। इसके अंतर्गत वे प्रबन्ध के पाँच धातुओं (जिन्हें उन्होंने भाग कहा है), यथा - **उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव, अंतरा, आभोग** एवं छह अंगों, यथा - **पद, ताल, स्वर, पाट, तेन** तथा **बिरुद्ध** की गणना करते हैं। उन्होंने प्रबन्धों के तीन प्रकारों का वर्णन किया है, यथा- **सूड**, **आलि** एवं **विप्रकीर्ण**। तत्पश्चात् वे वाग्गेयकार के लक्षण व गायन के गुण तथा दोष बताते हैं।

पाठगत प्रश्न 8.1

1. **संगीत पारिजात** कब लिखा गया?
2. पं. अहोबल ने वीणा के तार पर कितने शुद्ध तथा विकृत स्वर स्थापित किये?
3. संगीत पारिजात का शुद्ध सप्तक किस आधुनिक सप्तक के समान है?
4. संगीत पारिजात में कितने श्लोक हैं?
5. मूर्च्छना एवं स्वर प्रस्तार के अंतर्गत पं. अहोबल स्वरों के संयोजन की किस पद्धति की चर्चा करते हैं?
6. संगीत पारिजात में दिये गये चतुर्विध वर्णों के नाम बताइये।
7. संचारी वर्ण के आधार पर पं. अहोबल ने कितने अलंकारों का उल्लेख किया है?
8. संगीत पारिजात में दी गई सात शुद्ध जातियों के नाम बताइये।
9. संगीत पारिजात में दी गई पाँच गीतियों के नाम बताइये।
10. संगीत पारिजात में कितने रागों का उल्लेख हुआ है?
11. संगीत पारिजात के अनुसार प्रबन्ध के पाँच भाग क्या हैं?

8.3 वाद्य ताल कांड

द्वितीय भाग के अंतर्गत पं. अहोबल चार भिन्न प्रकार के संगीत वाद्य, यथा- **तत, आनद्ध, सुषिर** तथा **धन** का वर्णन करते हैं। तत अर्थात् तंत्री वाद्यों के अंतर्गत वे आठ प्रकार की वीणाओं की चर्चा करते हैं। आनद्ध अथवा ताल वाद्य जिन्हें थाप देकर

बजाया जाये आठ बताये हैं, दस प्रकार के सुषिर अर्थात् वायु के प्रयोग से बजने वाले वाद्य बताये हैं एवं बारह प्रकार के घन अथवा धातु से निर्मित वाद्य बताये हैं। तत्पश्चात् वे ताल के दशविध प्राचीन तत्त्व 'ताल दशप्राण' का वर्णन करते हैं, यथा, **काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति एवं प्रस्तार**।

टिप्पणी

8.4 पं. अहोबल के योगदान एवं उनका आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत पर प्रभाव

आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत को आकार देने में पं. अहोबल ने निम्न रूप से महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है

1. **अनावश्यक स्वरों का त्यागना**–मूलत: उन्होंने उनतीस स्वरों का उल्लेख किया है। चूँकि कई स्वरों का स्थान एक ही है परन्तु नाम अलग हैं, अत: मूल सात शुद्ध व बाईस विकृत स्वरों के स्थान पर उन्होंने रागों के वर्णन में केवल सात शुद्ध व पाँच विकृत स्वरों का प्रयोग किया है।

2. **वीणा के तार पर स्वरों की स्थापना**– यद्यपि विस्तारपूर्वक नहीं, फिर भी उन्होंने वीणा के तार के माध्यम से स्वरों के स्थान को प्रदर्शित किया है।

3. **स्वरों की कंपन संख्या के परिकलन हेतु वैज्ञानिक परिमाण प्रस्तुत करना** – स्वरों के मध्य दूरी को प्रत्यक्ष रूप से प्रदर्शित करने से स्वरों की कंपन संख्या के परिकलन हेतु परिमाण प्रस्तुत हो पाये।

पाठगत प्रश्न 8.2

1. पं. अहोबल के द्वारा वर्णित चतुर्विध वाद्यों के नाम बताइये।
2. उन्होंने कितने प्रकार की वीणाओं का उल्लेख किया है?
3. उन्होंने थाप देकर बजाये जाने वाले ताल वाद्य कितने बताये हैं?
4. **संगीत पारिजात** में दिये गये ताल के दशविध प्राचीन तत्त्व क्या हैं?
5. पं. अहोबल ने वीणा के तार पर कितने स्वरों की स्थापना की?
6. पं. अहोबल के द्वारा मूल रूप से कितने स्वरों का उल्लेख किया गया है?
7. पं. अहोबल ने स्वरों की कंपन संख्या के परिकलन के लिये माध्यम किस प्रकार प्रस्तुत किया है?
8. पं. अहोबल ने कितने ग्रामों का उल्लेख किया है?

आपने क्या सीखा

पं. अहोबल कृत संगीत पारिजात मध्यकालीन संगीत से संबन्धित महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रंथों में गणमान्य है। यह प्राचीन तथा आधुनिक समय में प्रचलित संगीत को जोड़ने वाली कड़ी का कार्य करता है। आधुनिक संदर्भ से इनके द्वारा प्रस्तुत स्वरों का विश्लेषण विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनके द्वारा दिया गया श्रुति और स्वर में भेद अनोखा है। इन्होंने संगीत की कुछ महत्त्वपूर्ण अवधारणाओं को एक व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत किया है।

पाठांत प्रश्न

1. पं. अहोबल श्रुति और स्वर में भेद किस प्रकार बताते हैं?
2. संगीत पारिजात में स्वरों के विश्लेषण की चर्चा कीजिये। आधुनिक संदर्भ में यह किस प्रकार उल्लेखनीय है?
3. संगीत पारिजात में दी गई ग्राम एवं मूर्च्छना की अवधारणा की चर्चा कीजिये।
4. संगीत पारिजात के अनुसार प्रबन्ध की चर्चा कीजिये।
5. पं. अहोबल के योगदानों तथा आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत पर उनके प्रभाव का विवरण दीजिये।
6. संगीत पारिजात के वाद्य ताल कांड की चर्चा कीजिये।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

8.1

1. सत्रहवीं शताब्दी ई.।
2. सात शुद्ध एवं पाँच विकृत स्वर।
3. काफी।
4. 708।
5. खण्ड–मेरू।
6. स्थायी, आरोही, अवरोही, संचारी।

7. अड़तीस।
8. षाड्जी, आर्षभी, गांधारी, मध्यमा, पंचमी, धैवती, नैषादी।
9. शुद्धा, भिन्ना, गौड़ी, वेसरा, साधारणी।
10. 122
11. उद्ग्राह, मेलापक, ध्रुव, अंतरा, अभोग।

8.2

1. तत, आनद्ध, सुषिर, घन।
2. आठ।
3. आठ।
4. काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति, तथा प्रस्तार।
5. बारह।
6. उनत्तीस।
7. वे स्वरों के मध्य दूरी को प्रत्यक्ष रूप से प्रदर्शित करते हैं।
8. तीन।

पारिभाषिक शब्दावली

1. मध्य – गले से उत्पन्न।
2. मंद्र – गले के नीचे से उत्पन्न।
3. मंगलाचरण – ईश्वर का आह्वान।
4. नाद – नियमित कंपनों से युक्त ध्वनि।
5. राग – हिन्दुस्तानी संगीत का सांगीतिक अनुक्रम विन्यास।
6. श्रुति – संगीत की लघुतम इकाई जो सुनी जा सके।
7. स्वर – नोट, राग में रंजकता एवं अनुरणनात्मकता प्राप्त करने पर श्रुतियों का स्वरूप।
8. तार – मस्तिष्क से उत्पन्न।

242hi09

9

संगीत के क्षेत्र में महान विभूतियों की जीवनी तथा उनका योगदान

राजा मानसिंह तोमर, तानसेन, सदारंग-अदारंग

समस्त ललित कलाओं में विशेष रूप से संगीत में गायन को इसलिये सर्वोपरि माना गया है, क्योंकि इसमें बिना किसी बाह्य माध्यम के कलाकार की भावना को समाज तक पहुंचाने की क्षमता होती है। समय समय पर संगीत के क्षेत्र में इस भूमि पर महान विभूतियों ने जन्म लिया तथा संगीत के विद्यार्थियों का मार्ग दर्शन किया। राजा मानसिंह तोमर, मियां तानसेन, सदारंग एवं अदारंग के योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण हैं जिनका प्रभाव कई पीढ़ियों तक रहेगा।

ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर न केवल संगीत के राजसी आश्रयदाता थे, अपितु स्वयं एक संगीतज्ञ थे। गायन की ध्रुपद विधा को प्रचलित करने का श्रेय तो उन्हें जाता ही है, साथ ही वे स्वयं ध्रुपद गायन में सक्षम थे। ऐसा माना जाता है कि उन्होंने अनेक ध्रुपद रचनाएँ कीं एवं गुर्जरी तोड़ी, माल गुर्जरी तथा मंगल गुर्जरी जैसे रागों का निर्माण किया। अपने दरबारी संगीतज्ञों की मदद से उन्होंने 'मानकुतूहल' नामक पुस्तक संकलित की। यद्यपि मूल कृति अब उपलब्ध नहीं है, फिर भी इसका 'राग दर्पण' नाम से फ़कीरुल्लाह के द्वारा फ़ारसी में अनुवाद किया गया था, जो उस समय के संगीत के विविध आयामों पर प्रकाश डालता है।

बादशाह अक़बर के दरबार में नवरत्नों में से एक, तानसेन के विषय में किंवदंती है कि राग मल्हार गाने पर वे वर्षा ले आते थे तथा उनके राग दीपक गाने पर दीपक जल उठते थे। उनके नाम से सम्बद्ध कुछ राग मियां की तोड़ी, मियां की मल्हार, दरबारी कोव्हड़ा तथा मियां की सारंग हैं।

गायन की ख्याल विधा के रचनाकारों के रूप में सदारंग-अदारंग के नाम अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। दिल्ली के मुहम्मद शाह 'रंगीले' के शासनकाल में सदारंग-अदारंग के द्वारा ख्याल की हज़ारों बंदिशों की रचना की गई जिनमें बादशाह के नाम के साथ इन

दोनों के उपनामों का प्रयोग भी दिखाई देता है, ख्याल की परंपरागत रचनाओं के रूप में यह रचनाएँ आज भी प्रचलित हैं।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन के पश्चात आप–

- प्रसिद्ध संगीतकारों तथा कलाकारों को उदघाटित कर सकेंगे;
- महान संगीतकार तानसेन के जीवन एवं संगीत के क्षेत्र में उनके योगदान का उल्लेख कर सकेंगे;
- संगीत के संरक्षण एवं उसके विकास में राजा मानसिंह तोमर कि भूमिका को स्पष्ट कर सकेंगे;
- स्वरलिपियों का समुचित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

9.1 राजा मानसिंह तोमर

संगीत की प्रसिद्ध नगरी ग्वालियर पर तोमर वंश ने लगभग एक शताब्दी तक राज्य किया। राजा मानसिंह तोमर इस वंश के सबसे प्रसिद्ध राजा हुए। इन्होंने ग्वालियर में सन् 1486 से 1516 ई. तक शासन किया। अपने शासनकाल में इन्हें कई बार शत्रुओं का सामना करना पड़ा परन्तु इस पराक्रमी राजा ने अपने बाहुबल और सैन्यबल से ग्वालियर को सदैव सुरक्षित रखा।

9.2 संगीत के क्षेत्र में राजा मानसिंह तोमर का योगदान

राजा मानसिंह का संगीत ज्ञान बहुत उच्चकोटि का था। इन्होंने अपने समय के श्रेष्ठ गायक वादकों की सहायता से, (जिनमें भिन्नू, बख्शू, चरजू, घोंडी तथा पांडवी के नाम उल्लेखनीय हैं) **'मानकुतूहल'** नामक ग्रन्थ की रचना की जिसका फ़ारसी अनुवाद सन् 1673 ई. में 'राग-दर्पण' नाम से फ़कीरुल्लाह ने किया।

मानकुतूहल ग्रन्थ की मूल प्रति सुलभ न होने से 'राग-दर्पण' के आधार पर इसकी विषय वस्तु का ज्ञान होता है।

फ़कीरुल्ला के अनुसार मानकुतूहल में मुख्य छः राग–**भैरव, मालकौंस, दीपक, श्री, मेघ** और **हिंडोल** माने गए हैं। प्रत्येक राग की पांच या छः रागिनियों का भी उल्लेख है। रागों का विभाजन **औडव, षाडव, सम्पूर्ण** के आधार पर किया गया है। इसके अतिरिक्त गायकों के गुण-अवगुणों की चर्चा है तथा चार प्रकार के वाद्यों का भी उल्लेख है।

टिप्पणी

मानकुतूहल में श्रेष्ठ वाणीकार की विशेषताओं का भी वर्णन है। उसके अनुसार श्रेष्ठ गायक तथा रचयिता को व्याकरण, पिंगल, अलंकार, रस-भाव, देशाचार, लोकाचार का अच्छा ज्ञान होना चाहिये। उसकी प्रवृत्ति कलानुवर्ति तथा समय के साथ सामंजस्य स्थापित करने वाली होनी चाहिये। उसके गीत विचित्र तथा अनूठे होने चाहिये तथा संगीत वाद्य, नृत्य में उसकी पैठ होने के अतिरिक्त उसे प्रबन्ध का भी उत्तम ज्ञान होना चाहिये।

फ़कीरुल्लाह तथा अन्य अनेक आधुनिक विद्वानों के अनुसार ध्रुपद गायकी के प्रचार का श्रेय राजा मानसिंह को है। वे ध्रुपद गायन में विशेष दक्ष थे। उन्होंने स्वयं बहुत से ध्रुपदों की रचना की तथा इस गायकी को बहुत प्रोत्साहन दिया। उनकी रचनाओं में देवताओं तथा महापुरुषों की स्तुतियां है, कुछ में श्रृंगारमय चित्र भी हैं। इनमें लोकभाषा (ब्रजभाषा) का प्रयोग किया गया है जिससे ये सामान्य जनता में विशेष लोकप्रिय हुए। आज भी इनके रचे हुए अनेक ध्रुपद प्रचार में हैं।

राजा मानसिंह ने कुछ नवीन रागों की भी रचना की जिनमें **गुर्जरी तोड़ी, मालगुर्जरी, मंगलगुर्जरी** जैसे इत्यादि प्रसिद्ध हैं। राजा मानसिंह स्थापत्य कला में भी रुचि रखते थे। उनके द्वारा निर्मित कुछ इमारतों में **मानमन्दिर** तथा **गुर्जरी** महल उल्लेखनीय हैं।

सिकन्दर के पश्चात् जब इब्राहीम लोदी गद्दी पर बैठा तो ग्वालियर पर अधिकार करने की महत्त्वाकांक्षा से उसने ग्वालियर पर आक्रमण कर दिया। इसी बीच सन् 1516 ई. में राजा मानसिंह वीरगति को प्राप्त हुए।

पाठगत प्रश्न 9.1

1. राजा मानसिंह तोमर कहां के शासक थे?
2. राजा मानसिंह तोमर के शासनकाल का समय लिखिये।
3. राजा मानसिंह ने किस ग्रन्थ की रचना की थी?
4. राजा मानसिंह किस गायन शैली के प्रचारक माने जाते हैं?
5. राजा मानसिंह द्वारा निर्मित इमारतों के नाम बताइये।

9.3 तानसेन

शायद ही कोई ऐसा संगीत प्रेमी होगा जो संगीत सम्राट तानसेन के नाम से परिचित न हो। तानसेन की जन्मतिथि के विषय में मतभेद हैं। कुछ विद्वानों के मतानुसार ग्वालियर से अट्ठाईस मील दूर बेहट नामक एक छोटे से गांव में तानसेन का जन्म 1506 ई. में हुआ था। 'अकबरनामा' और 'आईने अकबरी' के रचयिता अबुल फ़ज़ल के अनुसार तानसेन की मृत्यु 26 अप्रैल सन् 1589 ई. को आगरा में हुई थी। इस प्रकार तानसेन की मृत्यु लगभग 83 वर्ष की आयु में हुई।

टिप्पणी

ऐसा कहा जाता है कि तानसेन के पिता का नाम मकरन्द पांडे था। वे हिन्दू थे। पुत्र पैदा होने पर उनका नाम तन्नामिश्र, त्रिलोचन, तन्नू या रामतनु रखा गया।

तानसेन की प्रारम्भिक शिक्षा उनके पिता मकरन्द पांडे द्वारा ही हुई थी। बचपन से ही तानसेन की संगीत में रुचि थी। तानसेन के विषय में मान्यता है कि उन्होंने वृन्दावन के तत्कालीन प्रसिद्ध सन्त गायक स्वामी हरिदास जी से संगीत शिक्षा प्राप्त की। एक सूत्र के अनुसार मुहम्मद आदिल शाह उर्फ अब्दाली भी तानसेन के गुरु रह चुके हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार तानसेन की संगीत शिक्षा ग्वालियर में ही सम्पन्न हुई जो उस समय संगीत का मुख्य केन्द्र था। यद्यपि इन समस्त तथ्यों के विषय में मतभेद हैं तथापि वे एक श्रेष्ठ कलाकार थे इसके विषय में सभी एकमत हैं।

जिन राजदरबारों में तानसेन को सम्मान मिला उनमें तीन के नाम उल्लेखनीय है।

1. सूरवंश के राजा मुहम्मदशाह आदिल
2. रीवां के राजा रामचन्द्र वघेला
3. मुग़ल बादशाह सम्राट अकबर

अकबर के दरबार में तानसेन उनके नवरत्नों में से एक थे जहाँ आप जीवन पर्यन्त रहे और वहीं सन् 1589 ई. में इनका निधन हो गया।

9.4 तानसेन का संगीत में योगदान

तानसेन ने अनेक ध्रुवपदों की रचना की जिनकी विषय वस्तु देवी-देवताओं की स्तुति तथा संगीत के पारिभाषिक शब्दों आदि से सम्बन्धित है। तानसेन ने अनेक ध्रुवपद राजा रामचन्द्र बघेला तथा बादशाह अकबर की प्रशंसा में लिखे। उस समय की चार ध्रुपद बानियों (वाणियों)–**खंडार, नौहार, डागुर, गौरहार** अथवा **गोबरहार** में से तानसेन गौरहार वाणी के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। कुछ रागों के नाम से पहले मियां शब्द जोड़ा जाता है, उनका संबंध तानसेन से माना जाता है, जैसे **मियां की सारंग, मियां मल्हार, मियां की तोड़ी** इत्यादि। इनके अतिरिक्त राग दरबारी **कान्हड़ा** भी उनके द्वारा प्रचारित माना जाता है। तानसेन द्वारा रचित ध्रुवपद और राग आज भी बहुत लोकप्रिय हैं।

तानसेन के चार पुत्र हमीरसेन, सूरतसेन, तानतरंग खाँ एवं बिलासखाँ हुए। तानसेन की एक पुत्री सरस्वती का विवाह मिश्री सिंह से हुआ। उनकी पुत्र परम्परा के वंशज ध्रुपद गायक एवं रबाबिये कहलाते हैं तथा पुत्री परम्परा के वंशज बीनकार कहलाते हैं। वह अपने समय के श्रेष्ठतम गायक थे। उनका नाम संगीत के आकाश में ध्रुवतारे के समान सदा अटल रहेगा।

टिप्पणी

पाठगत प्रश्न 9.2

1. तानसेन का जन्म स्थल किस शहर के निकट था?
2. तानसेन किस गायन शैली में प्रवीण थे?
3. तानसेन की मृत्यु किस वर्ष में हुई?
4. किसके दरबार में तानसेन को एक नवरत्न माना गया?

9.5 सदारंग-अदारंग

हिन्दुस्तानी संगीत में ख्याल गायन शैली की बहुत सी रचनाओं में 'सदारंगीले मोंमदसा' या 'मोंमदसारंगीले' का नाम बहुत से संगीत-प्रेमियों ने सुना होगा। मोहम्मद शाह का असली नाम रौशन अख़्तर था किन्तु ये मोहम्मद शाह रंगीले के नाम से जाने जाते हैं। ये 28 सितम्बर सन् 1719 ई. को दिल्ली के सिंहासन पर बैठे तथा सन् 1748 ई. को नादिरशाह ने दिल्ली पर चढ़ाई कर दी तथा इन्हें पराजित कर दिया। उसी वर्ष इनकी मृत्यु हो गई।

राजनीति में मोहम्मद शाह का अनुभव शून्य था इसीलिये इनके शासन काल में स्थिरता न आ पाई थी किन्तु संगीत की दृष्टि से उनका शासन काल महत्त्वपूर्ण रहा। उनके दरबारी बीनकार नियामत खां या नेमत खां ने, जो 'सदारंग' के नाम से जाने जाते है, हमेशा के लिये उनका नाम संगीत जगत में अमर कर दिया।

दरगाह कुली खां कृत 'मुरक्क-ए-देहली' सन् 1737 ई. से सन 1741 ई. के बीच लिखी गई थी। इस कृति में लेखक ने उस समय के दिल्ली के हालात, यहां की संगीत महफिलों एवं कलाकारों, संगीतकारों आदि का ब्यौरा दिया है। दरगाह कुली खां के अनुसार नेमत खां अथवा नियामत खां के पिता का नाम परमोल खां था। नेमत खां का जन्म औरंगजेब के शासन काल (राज्यकाल सन् 1659 ई. से सन् 1707 ई.) में हुआ था।

मुग़लवंश के अन्तिम बादशाह मुहम्मदशाह का शासनकाल सन् 1719 से 1748 ई. तक रहा। राजनीति के क्षेत्र में मुहम्मदशाह अधिक सफल नहीं हो पाए परंतु संगीत के प्रति विशेष लगाव ने उन्हें सदा के लिये अमर बना दिया। सदारंग इन्हीं के दरबारी गायक थे। इनका वास्तविक नाम नेमत खां अथवा नियामत खां था। दरगाह कुली खां कृत 'मुरक्क-ए-दिल्ली' के अनुसार अदारंग इनके भतीजे थे। अदारंग का वास्तविक

नाम फ़िरोज़खां था। अदारंग का विवाह सदारंग की पुत्री से हुआ था। इस प्रकार वह सदारंग के भतीजे, शिष्य एवं दामाद थे।

सदारंग एक उच्चकोटि के वाग्गेयकार, कुशल ध्रुपद गायक और उत्तम बीनकार (वीणावादक) थे। यद्यपि ख्याल गायन शैली उनसे पूर्व अस्तित्व में आ चुकी थी परन्तु उसे प्रचार में लाने का श्रेय इन्हीं को है। आपने बादशाह को प्रसन्न करने के लिये सैंकड़ों ख्यालों की रचना की और उनमें अपने उपनाम सदारंगीले के साथ बादशाह का नाम जोड़ दिया। तभी उनकी बन्दिशों में 'मोंमदसा रंगीले' या 'सदारंगीले मोहम्मदशाह'–ये शब्द प्रयुक्त हुए मिलते हैं। उनकी रचनाएं ब्रजभाषा, राजस्थानी, पूरबी हिन्दी तथा कुछ पंजाबी भाषा में भी उपलब्ध हैं, जिनमें हर प्रकार की विषय वस्तु पाई गई है तथा विभिन्न तालों यथा **तिलवाड़ा, झूमरा, आड़ा चौताल, एकताल, चारताल, तीनताल** आदि का सुन्दर प्रयोग किया गया है।

सदारंग की कुछ बन्दिशें उदाहरणस्वरूप इस प्रकार है:–

(1) राग मेघ (झपताल)

स्थाई – गरजे घटा घन का रे री कारे
पावस ऋतु आई दुल्हन मन भावे

अन्तरा – रैन अँधेरी बिजुरी डरावे
सदारंगीले मौमदसा पिया घर नाहीं

(2) राग बिहाग (तीन ताल)

स्थाई – बालम रे मोरे मन की चीते होवन दे रे
होवन देरे मीत पियरवा

अन्तरा – सदारंग जिन जावो – बिदेसवा
सुख नींदरिया सोवन देरे

स्वरों के द्वारा भावाभिव्यक्ति पर उनका अद्भुत अधिकार था। संगीत के प्रति उनका इतना लगाव था कि वह प्रतिमास अपने घर एक संगीत गोष्ठी करते थे। जिसमें दिल्ली के सरदार, रईस, प्रमुख नागरिक और कलाकार सभी उपस्थित होते थे।

अदारंग भी एक उच्चकोटि के गायक और प्रतिष्ठित बीनकार (वीणावादक) थे। यह ध्रुपद, ख्याल और तराना विधाओं की रचनाएं किया करते थे। इनकी रचनाएं आध्यात्मिक तथा दार्शनिक भावनाओं से परिपूर्ण हैं। उदाहरणस्वरूप राग मियाँ मल्हार में एक बन्दिश निम्न रूप में है:–

राग मियाँ मल्हार (एकताल)

स्थायी – करीम नाम तेरो तू साहेब सतार

अन्तरा – दुख दरिद्र दूर कीजे, सुख देही सबन को
अदारंग बिनती करत रहे, सुन ले हो करतार

इसी प्रकार राग देसी तीनताल में बन्दिश इस प्रकार है:–

स्थायी – सांची कहत है अदारंग यह, नदी नाव संयोग

अन्तरा – कौन किसी के आवे जावे, दाना पानी किस्मत लावे यही कहत सब लोग।

उनकी रचनाओं में जटिलता, परिपक्वता और प्रौढ़ता से प्राप्त तरलता परिलक्षित होती है। सदारंग तथा अदारंग दोनों ने अपने शिष्यों को ख्याल गायन की शिक्षा प्रचुर मात्रा में दी तथा उसका अत्यधिक प्रचार किया। परिणाम स्वरूप तत्कालीन गायक–गायिकाओं ने ख्याल गायन को अधिक अपनाया। यथापि इन्होंने सैंकड़ों ख्यालों की रचना की परन्तु स्वयं ये धुप्रद ही गाते रहे। उनकी रचनाएं आज भी प्रत्येक घराने में बहुत आदर के साथ गाई जाती हैं।

इस प्रकार ख्याल गायन के उत्कर्ष का श्रेय सदारंग तथा अदारंग इन दोनों को जाता है।

पाठगत प्रश्न 9.3

1. सदारंग का असली नाम क्या था?
2. अदारंग का असली नाम क्या था?
3. नियामत खां कौन सा वाद्य बजाने में प्रवीण थे?
4. नियामत खां हिन्दुस्तानी संगीत की किस शैली के गीतों की रचना करने के लिये प्रसिद्ध हैं?

9.6 सदारंग-अदारंग का संगीत के क्षेत्र में योगदान

नेमत खां की ख्याति मोहम्मद शाह रंगीले के दरबार में अपनी चरम सीमा पर थी।

टिप्पणी

मोहम्मद शाह स्वयं एक अच्छे संगीतकार थे। मुरक्क-ए-देहली में नेमत खां को अद्वितीय बीन नवाज़ बताया गया है जिसका कोई सानी नहीं था। नेमत खां ने बहुत से ख्यालों की रचना की थी। अपनी इन रचनाओं को दरबार की गायिकायों को प्रशिक्षण देने में भी उनका योगदान रहा। संगीत जगत में नेमत खां का नाम सदारंग के नाम से जाना जाता है। दरगाह कुली खां को स्वयं उनकी महफिलों के सुनने का अवसर प्राप्त हुआ था।

नेमत अथवा नियामत खां अपनी बनाई हुई रचनाओं में बादशाह मोहम्मद शाह का नाम उनकी प्रशंसा स्वरूप डाल दिया करते थे। वे अपने उपनाम सदारंग के साथ कभी पहले या कभी बाद में बादशाह का नाम जोड़ दिया करते थे। इस प्रकार उनकी रचनाओं में 'सदारंगीले मोमदसा' अथवा 'मोमदसा रंगीले' लिखा पाया जाता है।

कहा जाता है कि आगे चलकर अन्य कलाकारों ने भी नए-नए ख्याल की रचनाएं बनाकर उनमें 'सदारंगीले' नाम जोड़ दिया। इस प्रकार बहुत से ख्याल 'सदारंग' के नाम पर बन गए।

सदारंग के साथ-साथ कुछ रचनाओं में अदारंग का नाम भी पाया जाता है। 'मुरक्क ए देहली' के अनुसार ये सदारंग के भतीजे थे। अदारंग का असली नाम फिरोज़ खां था। यानि फिरोज़ खां का उपनाम 'अदारंग' था। अदारंग भी एक उच्च कोटि के गायक एवं एक प्रतिष्ठित बीनकार थे। अदारंग का विवाह सदारंग की पुत्री से हुआ था, इस प्रकार वे सदारंग के भतीजे, शिष्य एवं दामाद थे। सदारंग एवं अदारंग ने श्रेष्ठतम ख्याल रचनाएं की जो आज भी उतनी ही प्रसिद्ध है, जितनी उस काल में थी।

उनके द्वारा रचित कुछ ख्याल रचनाएं पंजाबी भाषा में भी उपलब्ध हैं। इस प्रकार 'सदारंग', अदारंग संगीत जगत के अपने नाम के साथ बादशाह का नाम भी अमर कर गए।

पाठगत प्रश्न 9.4

1. सदारंग-अदारंग की बंदिशों में बादशाह का नाम किस प्रकार दिया गया होता है?
2. उनकी रचनायें किन-किन भाषाओं में प्राप्त हैं?
3. अदारंग का सदारंग से क्या रिश्ता था?
4. सदारंग-अदारंग स्वयं किस विधा का गायन करते थे?

टिप्पणी

आपने क्या सीखा

राजा मानसिंह तोमर, तानसेन, एवं **सदारंग-अदारंग** जैसे महान संगीतकारों के योगदान को भुलाया नहीं जा सकता। संगीत जगत ऐसी महान विभूतियों का सदैव कृतज्ञ रहेगा। नई पीढ़ी के विद्यार्थियों, शिक्षकों का कर्त्तव्य है कि वे इस अभूतपूर्व विरासत को संजोकर रखने हेतु कार्य करे। इस संगीतकारों के जीवन से प्रेरणा पाकर समाज में हिन्दुस्तानी संगीत को सम्मान जनक, प्रतिष्ठित स्थान दिलाने की दिशा में कार्यरत हों।

पाठांत प्रश्न

1. राजा मानसिंह तोमर का संगीत के क्षेत्र में क्या योगदान है? विस्तार से लिखिये।
2. किन राज दरबारों में तानसेन को अत्यधिक सम्मान मिला? लिखिये।
3. 'सदारंग' द्वारा निर्मित कुछ रचनाओं का उल्लेख कीजिये।
4. किस राज दरबार में सदारंग ने प्रसिद्धि पाई?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

9.1

1. ग्वालियर
2. सन् 1484 ई. से सन् 1516 ई.
3. मानकुतूहल
4. ध्रुपद
5. मानमंदिर, गुर्जरी महल

9.2

1. ग्वालियर
2. ध्रुपद

टिप्पणी

3. सन् 1589 ई.
4. अक़बर

9.3

1. नेमत खां अथवा नियामत खां
2. फिरोज़ खां
3. बीन (वीणा)
4. ख्याल शैली

9.4

1. 'सदारंगीले मोंमदशाह या 'मोंमदसा रंगीले'
2. ब्रजभाषा, राजस्थानी, पूरबी हिन्दी तथा पंजाबी
3. अदारंग सदारंग के भतीजे, शिष्य व दामाद थे।
4. ध्रुपद

सुझाव स्वरूप गतिविधियां

1. विद्यार्थियों को चाहिये कि वे किसी अच्छे गुरु के पास जाकर शास्त्रीय संगीत की सिलसिलेवार तालीम हासिल करें। इससे वे लाभान्वित होंगे।
2. जहां कहीं भी संगीत के कार्यक्रम आयोजित हों, उन्हें सुनने का अवसर हाथ से न जाने दें। इसके अलावा शास्त्रीय संगीत, उपशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत के अच्छे कैसेट अथवा सी.डी. सुने। इससे भी संगीत के क्षेत्र में उनकी जानकारी बढ़ेगी।

242hi10

10

हिन्दुस्तानी संगीत के प्रणेता

पं. विष्णु नारायण भातखंडे तथा पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर

आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के वर्तमान स्वरूप के अस्तित्व का श्रेय मुख्यत: संगीत के क्षेत्र में दो महान दिग्गजों के अभूतपूर्व योगदान को जाता है, **विष्णु द्वय – पं. विष्णु नारायण भातखंडे एवं पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर।** दोनों ने ही संगीत की उन्नति तथा विकास के लिये समुचित संस्थाओं की स्थापना की तथा जन साधारण में संगीत के प्रचार के लिये महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। दोनों ही हिन्दुस्तानी संगीत के शास्त्र पक्ष के पुनर्गठन तथा उसके क्रियात्मक पक्ष के साथ तालमेल करने के लिये उत्तरदायी थे।

पं. भातखंडे के प्रमुख योगदानों में रागों का ठाठों के अंतर्गत वर्गीकरण, समय सिद्धांत की व्याख्या, स्वरलिपि पद्धति, संगीत से सम्बन्धित संस्कृत कृतियों का संपादन एवं प्रकाशन, संगीत संस्थानों की स्थापना एवं विभिन्न पुस्तकों तथा लेखों का लेखन सम्मिलित हैं। पं. पलुस्कर के योगदानों में अभद्र शब्दों के स्थान पर भक्ति अथवा उपासना युक्त तत्वों का समावेश करके बंदिशों की पुन: रचना, संगीत संस्थानों की स्थापना, स्वर लिपि पद्धति तथा संगीत से सम्बन्धित अनेक पुस्तकों एवं लेखों का लेखन सम्मिलित है।

हिन्दुस्तानी संगीत जगत की इन दो महान विभूतियों के निरंतर प्रयासों के फल स्वरूप संगीत की विभिन्न रचनाओं एवं संगीत से सम्बन्धित प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का समय रहते प्रकाशन हो पाया, अन्यथा कालक्रम में वे विलुप्त हो जाते।

उद्देश्य

इस पाठ के अध्ययन से, विद्यार्थी इस योग्य हो पायेंगे कि

- पं. भातखंडे के योगदान के बारे में बता सकेंगे;

- पं. पलुस्कर के योगदान को बता सकेंगे;
- पं. भातखंडे तथा पं. पलुस्कर द्वारा आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत को आकार देने में उनकी भूमिका का उल्लेख कर सकेंगे;
- जन साधारण में हिन्दुस्तानी संगीत के प्रचार में इनकी भूमिका का विवरण दे सकेंगे;
- आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत पर इनके प्रयासों के प्रभाव का उल्लेख कर सकेंगे।

10.1 पं. विष्णु नारायण भातखंडे (1860-1936 ई.)

पं. विष्णु नारायण भातखंडे का जन्म 10 अगस्त 1860 ई. को हुआ। यद्यपि इनकी शिक्षा वकालत के लिये हुई थी, लेकिन इनके जीवन का परम लक्ष्य संगीत बन गया। आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के प्रतिष्ठाता के रूप में माननीय पं. भातखंडे ने संगीत की उन्नति एवं विकास सुनिश्चित करने के लिये कई कदम उठाये। इनके योगदानों का परिमाण इतना बृहत् था कि हिन्दुस्तानी संगीत का पुनरुत्थान आरम्भ करने के लिये काफी था।

10.2 पं. भातखंडे के योगदान

पं. भातखंडे के कुछ प्रमुख योगदान इस प्रकार हैं:

10.2.1 रागों का ठाठों के अंतर्गत वर्गीकरण

हिन्दुस्तानी संगीत के क्षेत्र में पं. भातखंडे के सबसे महत्त्वपूर्ण योगदानों में से एक था रागों का दस ठाठों के अंतर्गत वर्गीकरण दस ठाठों के नाम इस प्रकार हैं:-

1. **यमन**
2. **बिलावल**
3. **खमाज**
4. **भैरव**
5. **पूर्वी**
6. **मारवा**
7. **काफी**
8. **आसावरी**
9. **भैरवी**
10. **तोड़ी**

10.2.2 रागों के समय-सिद्धांत की व्याख्या

पं. भातखंडे का एक अन्य महत्त्वपूर्ण योगदान था– उनके द्वारा की गई रागों के

पारम्परिक समय-सिद्धांत की व्याख्या। उन्होंने स्वरों के आधार पर रागों के लिये विशिष्ट कालावधि निर्धारित करने की एक अत्यंत व्यवस्थित प्रणाली निर्मित की। उनकी अनोखी प्रणाली के माध्यम से रागों का वस्तुतः एक क्लिष्ट समय-सिद्धांत समझने में अधिक सहज एवं सरल बन पाया।

10.2.3 भातखंडे स्वरलिपि पद्धति

उन्होंने सांगीतिक रचनाओं को संग्रहित करने व सीखने के लिये एक साधन के रूप में स्वरलिपि पद्धति का विकास किया। तत्कालीन संगीत मौखिक परम्परा के रूप में सिखाया जाता था। रचनायें आसानी से उपलब्ध नहीं होती थीं। संगीतज्ञ रचनाओं को अपनी निजी सम्पत्ति समझते थे व उनसे अलग होने में हिचकिचाते थे। पं. भातखंडे ने लगभग 1,200 रचनाओं का क्रमिक पुस्तक मालिका श्रृंखला के छह भागों के अंतर्गत संकलन किया। मूल रूप से मराठी में संकलित इस श्रृंखला में घरानेदार रचनाओं एवं स्वर विस्तार युक्त रागों का वर्णन भातखंडे स्वरलिपि पद्धति में दिया गया है।

10.2.4 संगीत संबन्धी दुर्लभ संस्कृत ग्रंथों का संपादन एवं प्रकाशन

पं. भातखंडे को कई प्राचीन तथा दुर्लभ संगीत संबन्धी संस्कृत ग्रंथों के संपादन एवं प्रकाशन का श्रेय जाता है, जो अन्यथा समय बीतने पर विलुप्त अथवा नष्ट हो जाते।

10.2.5 संगीत संस्थाओं की स्थापना

उन्होंने संगीत के संस्थागत शिक्षण की आवश्यकता अनुभव की तथा 1918 ई. में ग्वालियर में माधव संगीत विद्यालय एवं 1923 ई. में लखनऊ में मैरिस कॉलेज ऑफ म्यूजिक की स्थापना की।

10.2.6 पुस्तकें व लेख

उन्होंने अपने जीवन काल में हिन्दुस्तानी संगीत के विभिन्न पहलुओं से संबन्धित अनके पुस्तकें व लेख लिखे। उनमें से कुछ के नाम नीचे दिये गये हैं:-

1.	श्रीमल्लक्ष्यसंगीतम्	-	संस्कृत
2.	अभिनव राग मंजरी	-	संस्कृत
3.	अभिनव ताल मंजरी	-	संस्कृत
4.	हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति (चार भागों में)	-	मराठी (हिन्दी अनुवाद 'भातखंडे संगीत शास्त्र)

टिप्पणी

5. क्रमिक पुस्तक मालिका (छह भागों में) – मराठी (हिन्दी अनुवाद)

6. स्वर मालिका – गुजराती वर्णों में स्वर लिपि की पुस्तक

7. गीत मालिका – सांगीतिक रचनाओं युक्त पत्रिका

8. ए कंपेरेटिव स्टडी ऑफ म्यूजिक सिस्टमस ऑफ द 15, 16 17 एन्ड 18 सेन्च्यूरीज़ (अंग्रेजी एवं हिन्दी अनुवाद)

पाठगत प्रश्न 10.1

1. पं. वि. ना. भातखंडे का जन्म कब हुआ था? उनकी शिक्षा किस व्यवसाय के लिये हुई थी?

2. हिन्दुस्तानी संगीत के क्षेत्र में पं. भातखंडे के सबसे महत्त्वपूर्ण योगदानों में से एक क्या था?

3. पं. भातखंडे के काल में संगीत की शिक्षा किस प्रकार होती थी?

4. क्रमिक पुस्तक मालिकाश्रृंखला के अंतर्गत पं. भातखंडे ने कितनी रचनाओं का संकलन किया?

5. पं. भातखंडे द्वारा स्थापित संस्थाओं के नाम बताइये।

10.3 पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर (1872-1931 ई.)

18 अगस्त, 1872 ई. में जन्में पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर की आँखों की ज्योति बचपन में चली गई थी। इस कारणवश वे अपनी नियमित शिक्षा जारी न रख सके तथा मिरज जाकर ग्वालियर घराने के पं. बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर के समक्ष संगीत शिक्षा ग्रहण करने लगे। उनके समय में संगीतज्ञों को समाज में विशेष आदर प्राप्त नहीं था। संगीतज्ञों की इस परिस्थिति को बदलने का उत्तरदायित्व उन्होंने स्वयं लिया तथा अपना संपूर्ण जीवन संगीत के प्रसार एवं प्रचार में लगा दिया। 1931 ई. में लकवा से पीड़ित होने पर उनकी मृत्यु हो गई।

10.4 पं. पलुस्कर के योगदान

पं. पलुस्कर के कुछ प्रमुख योगदान इस प्रकार हैं:-

10.4.1 भक्ति भाव के समावेश हेतु रचनाओं को पुन:निर्मित किया। उनके जीवनकाल में रचनाओं में प्रयुक्त शब्दों के स्तर में गिरावट आ गई थी। इस कारणवश, संगीतज्ञों तथा संगीत के प्रति साधारणत: आदर की एक कमी थी। इस परिस्थिति को बदलने के लिये वे रचनाओं में भक्ति भाव युक्त शब्दों का समावेश करने लगे।

10.4.2 संगीत संस्थाओं की स्थापना

पं. भातखंडे के समान पं. पलुस्कर को भी हिन्दुस्तानी संगीत में शिक्षा प्रदान करने के लिये समुचित संस्थाओं की आवश्यकता महसूस हुई। 1901 ई. में लाहौर में उन्होंने गंधर्व महाविद्यालय नाम से पहली संगीत संस्था की स्थापना की। तत्पश्चात् उन्होंने 1908 ई. में इसकी एक अन्य शाखा मुम्बई में खोली। आज भी इनके शिष्य भारत भर में इस संस्था की कई शाखायें चला रहे हैं।

10.4.3 पलुस्कर स्वरलिपि पद्धति

उन्हें पलुस्कर स्वरलिपि पद्धति नामक हिन्दुस्तानी संगीत की एक स्वरलिपि पद्धति के प्रणेता के रूप में श्रेय जाता है। गंधर्व महाविद्यालय की विभिन्न शाखाओं एवं राग विज्ञानश्रृंखला जैसी कुछ पुस्तकों में यह पद्धति अभी भी प्रयोग में लाई जाती है।

10.4.4 पुस्तकें एवं लेख

अपने जीवनकाल में उन्होंने लगभग पचास पुस्तकें लिखीं तथा 'संगीतामृत प्रवाह' नामक पत्रिका भी आरम्भ की। उनके द्वारा लिखी गई कुछ पुस्तकों के नाम नीचे दिये गये हैं:-

1. संगीत बाल प्रकाश
2. बाल बोध
3. राग प्रवेश (20 भाग)
4. संगीत शिक्षक
5. महिला संगीत

पाठगत प्रश्न 10.2

1. पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का जन्म कब हुआ?

टिप्पणी

2. मिरज में उन्होंने संगीत किनसे सीखा?

3. पं. पलुस्कर द्वारा 1901 ई. में लाहौर में स्थापित प्रथम संगीत संस्था का क्या नाम था?

4. पं. पलुस्कर द्वारा प्रकाशित जरनल का नाम बताइये।

10.5 आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत पर पं. भातखंडे तथा पं. पलुस्कर के प्रयासों का प्रभाव

पं. भातखंडे तथा पं. पलुस्कर के प्रयासों के फलस्वरूप हिन्दुस्तानी संगीत जन साधारण में प्रचलित हो पाया। पहले, हिन्दुस्तानी संगीत सीखने के इच्छुक किसी विद्यार्थी को कई साल केवल संगीतज्ञों को प्रसन्न करने में व्यतीत करने पड़ते थे। संगीतज्ञ अपनी सनक अथवा इच्छानुसार प्रशिक्षण देते थे। बंदिशों को वे अपनी निजी सम्पत्ति समझते थे।

हिन्दुस्तानी संगीत के इन दो पथप्रदर्शकों के अथक प्रयासों द्वारा बंदिशें जन साधारण के लिये सुलभ बन पाईं। संस्थाओं के खुलने से विद्यार्थियों को संगीत शिक्षा के लिये एक अनुकूल शैक्षणिक वातावरण उपलब्ध हो पाया। तत्पश्चात् वे गुणी संगीतज्ञों के संरक्षण में विशेष योग्यता प्राप्त कर सकते थे। पं. भातखंडे तथा पं. पलुस्कर के प्रयासों के ही परिणामस्वरूप हिन्दुस्तानी संगीत का पुनरुत्थान हुआ तथा समाज में उसका अधिकारपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ।

पाठगत प्रश्न 10.3

1. किनके प्रयासों के फलस्वरूप हिन्दुस्तानी संगीत जन साधारण में प्रचलित हो पाया?

2. पहले, हिन्दुस्तानी संगीत सीखने के इच्छुक कौन विद्यार्थी को कई साल क्या करने में व्यतीत करने पड़ते थे?

3. किनके द्वारा बंदिशें जन साधारण के लिये सुलभ बन पाईं?

4. संस्थाओं के खुलने से विद्यार्थियों को किस प्रकार लाभ हुआ?

5. किनके प्रयासों के परिणामस्वरूप हिन्दुस्तानी संगीत को समाज में उसका अधिकारपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ?

टिप्पणी

आपने क्या सीखा

पं. विष्णु नारायण भातखंडे तथा पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर दोनों ही आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत के स्तंभ हैं। उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन हिन्दुस्तानी संगीत की उन्नति एवं विकास में लगा दिया। भारत के विभिन्न भागों में संगीत के प्रचार व प्रसार के लिये संगीत संस्थाओं की स्थापना करने का श्रेय इन्हें ही जाता है। इनके प्रयासों के परिणामस्वरूप हिन्दुस्तानी संगीत के पुनरुत्थान हेतु एक आन्दोलन का आरम्भ हो गया।

पाठांत प्रश्न

1. पं. विष्णु नारायण भातखंडे तथा पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत को आकार देने में किस प्रकार उत्तरदायी हैं?
2. पं. भातखंडे के योगदान का वर्णन करें।
3. पं. पलुस्कर के योगदान का वर्णन करें।
4. जन साधारण में हिन्दुस्तानी संगीत के प्रचार में इनकी भूमिका का वर्णन करें।
5. आधुनिक हिन्दुस्तानी संगीत पर पं. भातखंडे तथा पं. पलुस्कर के प्रयासों के प्रभाव का उल्लेख करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

10.1

1. पं. भातखंडे का जन्म 10 अगस्त 1860 ई. को हुआ। उनकी शिक्षा वकालत के लिये हुई थी।
2. हिन्दुस्तानी संगीत के क्षेत्र में पं. भातखंडे के सबसे महत्त्वपूर्ण योगदानों में से एक था रागों का दस ठाठों के अंतर्गत वर्गीकरण।
3. पं. भातखंडे के काल में संगीत की शिक्षा मौखिक परम्परा के रूप में होती थी।
4. क्रमिक पुस्तक मालिकाशृंखला के अंतर्गत पं. भातखंडे ने 1,200 रचनाओं का संकलन किया।
5. 1918 ई. में ग्वालियर में माधव संगीत विद्यालय एवं 1923 ई. में लखनऊ में मैरिस कॉलेज ऑफ म्यूज़िक।

10.2

6. पं. विष्णु दिगम्बर पलुस्कर का जन्म 18 अगस्त, 1872 ई. में हुआ।
7. मिरज में उन्होंने ग्वालियर घराने के पं. बालकृष्ण बुआ इचलकरंजीकर से संगीत सीखा।
8. गंधर्व महाविद्यालय।
9. संगीतामृत प्रवाह।

10.3

1. पं. भातखंडे तथा पं. पलुस्कर।
2. पहले, हिन्दुस्तानी संगीत सीखने के इच्छुक किसी विद्यार्थी को कई साल केवल संगीतज्ञों को प्रसन्न करने में व्यतीत करने पड़ते थे।
3. पं. भातखंडे तथा पं. पलुस्कर।
4. संस्थाओं के खुलने से विद्यार्थियों को संगीत शिक्षा के लिये एक अनुकूल शैक्षणिक वातावरण उपलब्ध हो पाया।
5. पं. भातखंडे तथा पं. पलुस्कर।

पारिभाषिक शब्दावली

1. घरानेदार – हिन्दुस्तानी संगीत में ख्याल विधा के घरानों की गुरु–शिष्य परम्परा का पीढी दर पीढी निर्वाह।
2. स्वरलिपि पद्धति – बंदिश के विभिन्न पक्ष जैसे स्वर, पद एवं ताल के तत्त्वों को दर्शाने के लिये लिखित चिह्नों का प्रयोग करने की पद्धति।
3. मौखिक परम्परा – एक पीढ़ी से दूसरी पीढी तक मुख के बोल से शिक्षा प्रदान करना।
4. राग – हिन्दुस्तानी संगीत में सांगीतिक अनुक्रम विन्यास।
5. पुनरुथान – आन्दोलनकारी रूप से फिर से प्रचार में लाना जैसा कि 14–15 वीं शताब्दी के यूरोपीय कला और साहित्य के लिये हुआ।
6. ठाठ – आरोहात्मक क्रम युक्त सात स्वरों का जन्य समूह।